प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
मंत्री देव-सुकवि-सुधा-कार्यालय
कवि-कुटीर, लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

रत्नावली

श्रीयुत पण्डित जौहरीलाल शर्मा
रिटायर्ड संस्कृत प्रोफ़ेसर, गवर्नमेंट कॉलेज, मुरादाबाद
(ग्रंथकर्ता के पिता)

गंगा-फ़ाइनआर्ट प्रेस, लखनऊ

समर्पण

तात, आपके वत्सलता से भरित भाव का आभारी;
चरण-कमल-रस-रत मधुकर यह तनय विनत आज्ञाकारी,
अपनी कतिपय रचना-रेखा गुरुजन की आनंदकारी;
अर्पण करता है सेवा में, तुष्टि सदा हो कृपा-भरी।

रामदत्त भारद्वाज

वक्तव्य

बड़े हर्ष की बात है, हिंदी-संसार ने गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली की इस एकमात्र रचना का इतना आदर किया कि अब हम इसे दुबारा छाप रहे हैं।

आशा है, कन्याओं की विविध-शालाओं और विद्यापीठों में इसे पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाया जायगा, और स्त्रियों के हाथों में भी इस पुस्तक को उनके पति, पिता और पुत्र देंगे। कहना न होगा कि स्त्रियों में—विशेषकर युवतियों में—इस पुस्तक के प्रचार की कितनी आवश्यकता है—विशेषकर पाश्चात्य सभ्यता के आक्रमण के इस युग में!

कवि-कुटीर, लखनऊ
वसंत-पंचमी, २००२ } दुलारेलाल

FOREWORD

It is a pleasure to introduce to the public such a work as the present which includes a fine composition from the pen of a poetess whose number is not large in old Hindi literature. The fact that Ratnavali was the wife of Tulsidas, the great poet, who holds sway over the millions of our countrymen adds greater interest to the composition The dohas, which number 201, are remarkable in so far as almost each one of them contains the name of the authoress, and besides giving an intimate idea of the thoughts of this lady, who had to suffer life-long pangs of separation from her husband, they maintain the high moral standard of Indian womanhood Besides giving the original with variants and free Hindi rendering, Pandit Ramdat Bharadwaj has brought out at the end parallel thoughts from Sanskrit literature which shows that the authoress was fairly acquainted with Sanskrit literature in more than one field It is thus quite apparent that the basic Sanskrit learning and culture has found its expression in this 300 years' old composition from the pen of a talented lady, who was a life-partner of the Master, who represents to the masses the essence of ancient religion and culture.

I can not conclude without referring to the problem of the home of Tulsidas and his wife. To me it appears a great pity that no fundamental research was made by lovers of Tulsidas into this vital question and when Pandit Bharadwaj and others first adduced proofs in favour of the identification of Soron in Etah District as the birth-place of the Goswami, the Hindi scholarly world was rather slow in accepting it. One can imagine the controversies about Shakespeare but there had never been any doubt about his place being Stratford on-Avon. In the case of Goswami Tulsidas, who was more or less a contemporary of Shakespeare, it is unfortunately true that there is no agreed solution about his birth-place and the family to which he belonged. It is desirable that further researches be conducted on the point of home of Tulsidas and his wife Ratnavali, and all the internal and external evidence thoroughly examined with a view to attaining the truth.

K. N. Dikshit,
M.A.,F.R.A.S.B , Rao Bahadur,
Director-General of Archaeology in India,
26th August, 1941. New Delhi.

प्रस्तावना

जनता को प्रस्तुत ग्रंथ से परिचय कराने में मुझे प्रसन्नता है। इसमें ऐसी रचना भी सम्मिलित है, जो एक स्त्री-कवि की लेखनी से प्रसूत है, जिसकी संख्या प्राचीन हिंदी-साहित्य में अधिक नहीं। इस रचना का गौरव इस तथ्य से और भी अधिक बढ़ जाता है कि रत्नावली उन महाकवि तुलसीदास की धर्मपत्नी थीं, जिनका प्रभाव हमारे करोड़ों देशवासियों पर विद्यमान है। दोहों की संख्या २०१ है। विशेषता यह है कि प्रायः सभी में रचयित्री का नाम है, और ये दोहे आजीवन पति-वियोग-जन्य पीड़ा सहनेवाली महिला के आंतरिक विचारों का परिचय देने के अतिरिक्त भारतीय स्त्रीत्व के अत्युच्च सदाचार को प्रस्तुत बनाए हुए हैं। पंडित रामदत्त भारद्वाज ने उक्त दोहों के मूल-पाठ के अतिरिक्त पाठांतर और विशद गद्यानुवाद भी दिया है, साथ ही अंत में संस्कृत-साहित्य से समानार्थक वचन उद्धृत किए हैं, जिससे स्पष्ट है कि रचयित्री संस्कृत-साहित्य के अनेक क्षेत्रों से सुपरिचित थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधारभूत संस्कृत-साहित्य और संस्कृति उस प्रतिभाशालिनी महिला की क़लम द्वारा इस तीन सौ वर्ष की पुरानी कृति में आविर्भाव को प्राप्त हुई है, और यह महिला उस गुरु की जीवन-सहचरी थी, जिसको विशाल जनता प्राचीन धर्म और संस्कृति का प्रतिनिधि मानती है।

मैं तुलसीदास और उनकी धर्मपत्नी की जन्मभूमि एवं पारिवारिक समस्या की ओर इंगित किए बिना नहीं रह सकता। बड़े खेद की बात है कि तुलसी-प्रेमियों ने इस महत्त्व-पूर्ण प्रश्न के विषय में कोई आधार

अनुसंधान नहीं किया, और जब पंडित भारद्वाज एवं कुछ अन्य व्यक्तियों ने सर्वप्रथम गोस्वामीजी के जन्म-स्थान सोरों, ज़िला एटे के पक्ष में प्रमाण उपस्थित किए, तो हिंदी का विद्वत्समाज उन्हें स्वीकार कर लेने में कुछ शिथिल रहा। शेक्सपियर के विषय में जो वाद विवाद प्रचलित है, उसका अनुमान किया जा सकता है; पर उसका निवासस्थान स्ट्रेटफ़ोर्ड-ऑन-एवन था, इसमें कभी कोई संदेह नहीं रहा। किंतु शेक्सपियर के न्यूनाधिक-समकालीन गोस्वामी तुलसीदास के विषय में तो दुर्भाग्यतः यह सच है कि उनके जन्म-स्थान और वंश के विषय में सर्व-सम्मत निर्णय का अभाव है। अत. यह वांछनीय है कि गोस्वामी तुलसीदास और उनकी धर्म-पत्नी रत्नावली के गृह के विषय में और भी अधिक अनुसंधान हो, एवं सत्य की खोज के निमित्त सभी बाह्याभ्यंतर साक्ष्य की परिपूर्ण परीक्षा हो।

नई दिल्ली
२६ अगस्त, १६४१

काशीनाथ दीक्षित
एम्० ए०, एफ़्० आर० ए० एस्० बी०,
रायबहादुर, डाइरेक्टर - जेनरल ऑव आर्केऑलॉजी इन इंडिया (प्रधानाध्यक्ष भारतीय पुरातत्त्व-विभाग)

प्राक्कथन

'रत्नावली' को इस रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करने में मुझे अपने भाई चि० कृष्णदत्त भारद्वाज एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री का जो अमूल्य परामर्श एवं उत्साह और मित्रवर्य पंडित भद्रदत्त शर्मा शास्त्री का जो श्लाघ्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उसका महत्त्व मैं ही जानता हूँ। इस पुस्तक के अंतिम अध्याय 'लेख विमर्श' को मेरे सुयोग्य शिष्य चि० प्रेमकृष्ण तिवारी बी० ए० ने लिखा है। सोरों-निवासी पं० गोविंदवल्लभ भट्ट शास्त्री, काव्यतीर्थ जो प्राचीन पुस्तकों की प्रशस्त खोज में सदा तत्पर रहते हैं, मैं क्या, तुलसी-जगत् उनका आभारी है। स्थानीय वैद्य श्रीहरगोविंदजी पंडा का मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ, जिनकी कृपा से अनेक प्राचीन पुस्तकें देखने को मिलीं, और जिनसे 'वर्षफल' एवं 'भ्रमरगीत' के दो ऐसे पृष्ठ प्राप्त हुए, जो गोस्वामी तुलसीदास के वंश-परिचय के विषय में अब तक प्राचीनतम हैं। वे सभी सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं, जिनका उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है अथवा जिनके यहाँ प्राचीन पुस्तकें बड़ी सावधानी के साथ शताब्दियों से विद्यमान हैं।

मैं श्रीयुत डॉक्टर एन्० पी० चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डिप्टी-डाइरेक्टर-जेनरल ऑव आर्केअलॉजी, नई दिल्ली का भी बहुत कृतज्ञ हूँ, जिनसे तिथियों के निर्धारण में मुझे समय-समय पर सहायता मिलती रही है।

रामदत्त भारद्वाज

विषय-सूची

१.	समर्पण	५
२	foreword	७
३.	प्रस्तावना	९
४.	प्राक्कथन	११
५.	भूमिका	१३
६.	आलोचना	३७
७.	रत्नावली-चरित मूल-पाठ (पाठांतर-सहित)	४५
८	रत्नावली-चरित का गद्यानुवाद	८१
९.	रत्नावली के दोहे (पाठांतर और टीका-सहित)	९१
१०.	समानार्थक वचन	१९५
११.	लेख-विमर्श	२१५
१२.	रत्नावली-प्रशस्ति	२२५

भूमिका

रत्नावली-तुलसीदास

हिंदी-साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली को कोई स्थान नहीं मिला। स्थान की बात तो दूर रही, इस पुण्य-श्लोका का नाम भी लुप्तप्राय हो गया। तुलसीदास की पत्नी के नाते यदि कभी इसकी चर्चा चली भी, तो विकृत और कुत्सित रूप में। यह कवयित्री भी थी, इसका तो हिंदी-प्रेमियों को ठीक-ठीक पता भी नहीं। इसका जन्म-स्थान, मातृपितृकुल, विवाह एवं कुछ और-और बातें इस समय वादानुवाद का प्रबल विषय बन गई हैं। किंतु एतत्कालीन अन्वेषणों और आविष्कारों ने इस विषय के सब सब अनाधार मिथ्यावादों को छिपाकर बुद्धिगम्य, प्राचीन कथाओं और तथ्यों को प्रकाशित कर दिया। निम्न-लिखित पंक्तियों में ठोस प्रमाणों द्वारा मैं यह प्रतिपादन करने का यत्न करूँगा—

१—तुलसीदास का जन्म भारद्वाजगोत्रीय शुक्ल सनाढ्य ब्राह्मण-वंश में, आत्माराम और हुलासी के औरस से, सोरों (ज़िला एटा) में, हुआ।

२—गोस्वामीजी का विवाह रत्नावली से, संवत् १५८९ में, हुआ। इनके तारापति-नामक एक पुत्र हुआ, जो जन्म होने के कुछ वर्ष पश्चात् ही परलोक सिधार गया। एवं गोस्वामीजी ने अपनी पत्नी के आकस्मिक ज्ञानोपदेश से, संवत् १६०४ वि० में, संसार का माया-मोह छोड़ दिया।

३—रत्नावली बदरी-निवासी पंडित दीनबंधु पाठक की पुत्री थी।

इसका जन्म संवत् १५७७ वि० में हुआ, और इसी अमङ्गल संवत् १६०४ में, जब तुलसीदास घर-बार त्यागकर चले गए, रत्नावली की माता दयावती का देहांत भी हुआ।

४—रत्नावली ने २०१ उत्तम, लोक-हितप्रद दोहों की रचना की, जो अनेक स्थानों में उपलब्ध हैं। यह तपस्विनी, पति-परायणा देवी संवत् १६५१ वि० में परलोकवासिनी हुईं।

५—बदरी-ग्राम को सं० १६२७ वि० में गंगाजी ने बहाकर नष्ट कर दिया। इसके उपरांत यह ग्राम दुबारा बसाया गया, जैसा आज भी स्थित है।

६—व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि पिता नंददास और पुत्र कृष्णदास क्रम से तुलसीदास के चचेरे भाई और भतीजे थे।

७—बदरी सोरों (वाराह—क्षेत्र—शूकर-क्षेत्र) के सामने एक ग्राम था, और उन दिनों इनके बीच में गंगाजी बहती थीं।

इसके पूर्व कि आगे बढ़ूँ, मैं चाहता हूँ, प्रचलित विचारों और मिथ्यावादों की कुछ चर्चा कर दूँ—

एफ़्० ई० की, श्रीरामचंद्र शुक्ल और बाबू श्यामसुंदरदास ने अपने इतिहासों में इस साध्वी का नाम भी नहीं लिखा। हाँ, बाबू श्यामसुंदरदास और पं० रामनरेश त्रिपाठी ने रामचरित-मानस की भूमिकाओं और श्रीसूर्यकांत शास्त्री एवं श्रीरामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में अवश्य रत्नावली, उसके पिता दीनबंधु पाठक और पुत्र तारक का उल्लेख किया है। खेद है, अनेक भूमिकाओं और इतिहासों में गोस्वामीजी को उनकी पत्नी से फटकार द्वारा बोध कराया गया है। वह फटकार ऐसी तीव्र है, जो किसी भी पतिव्रता के लिये सर्वथा अनुचित है—

> लाज न लागत आपको, दौरे आएहु साथ।
> धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ!

अस्थि-चर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति ;
तैसी जौ श्रीराम महँ, होति न तव भव - भीति ।

अनेक टीकाकार और भूमिका-लेखक दो और काल्पनिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं । एक तो तुलसीदास के पास उनकी स्त्री ने यह दोहा लिख भेजा—

कटि की खीनी, कनक-सी रहत सखिन सँग सोय ;
मोंहि कटे की डर नहीं, अनत कटे डर होय ।

इस पर गोस्वामीजी ने यह उत्तर लिख भेजा—

कटे एक रघुनाथ सँग बाँधि जटा सिर केस ;
हम तो चाखा प्रेम - रस पतिनी के उपदेस ।

मेरी विनीत सम्मति में पत्नी का उपर्युक्त संदेश पतिव्रता के लिये उचित प्रतीत नहीं होता ।

दूसरे वृद्धावस्था में तुलसीदास भूलकर अपनी ससुराल पहुँच गए । उस समय उनकी स्त्री जीवित थी, और बहुत ही वृद्ध हो गई थी । पहले तो दोनो में से किसी ने एक दूसरे को नहीं पहचाना, पर रात में भोजन के समय स्त्री को संदेह हुआ । सबेरे जब तुलसीदास जाने लगे, तब स्त्री ने अपना भेद प्रकट किया, और अपने को भी साथ रखने के लिये कहा । तुलसीदास ने स्वीकार नहीं किया । तब स्त्री ने कहा—

खरिया खरी कपूर लौं उचित न पिय तिय त्याग ;
कै खरिया मोंहि मेलि कै अचल करहु अनुराग ।

यह सुनते ही तुलसीदास ने अपने झोले की सब चीज़ें ब्राह्मणों को बाँट दीं, और अपनी राह ली ।

उक्त दोनो काल्पनिक घटनाओं का उल्लेख जनश्रुति के आधार पर श्रीरामगुलाम द्विवेदी और सर ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम किया था । हो सकता है, गोस्वामी तुलसीदास अपनी वृद्धा स्त्री और

श्वशुर-गृह को न पहचान पाए हों, किंतु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वह उस गाँव को भी नहीं पहचान सके *।

"मेरे ब्याह न बरेखी" और "काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब" के 'आधार पर कुछ समालोचकों का कथन है कि इनका विवाह न हुआ। जब विवाह ही न हुआ, तो इन्हें किसी की लड़की से अपने लड़कों का विवाह तो करना नहीं था, इसीलिये यह निर्द्वंद्व थे। "मेरे ब्याह न बरेखी" का अर्थ यह नहीं है कि "मेरा ब्याह या बरेखी नहीं हुई" पर, अर्थ है 'मेरे यहाँ न तो ब्याह ही होना है और न बरेखी ही, क्योंकि किसी की बेटी से अपना बेटा तो ब्याहना नहीं है।" "काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब" का अर्थ इतना तो निकल सकता है कि संभवतः इनके कोई जीवित संतान न हो, पर यह नहीं निकल सकता कि ये अविवाहित थे।... फिर विनय-पत्रिका का यह पद—

लरिकाई बीती अचेत, चित चंचलता चौगुनी चाय।
जौबन-जुर जुवती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय॥

तो स्पष्ट घोषित करता है कि तुलसीदास का विवाह हुआ था। बहिःसाक्ष्य तथा जनश्रुति के भी सभी प्रमाणों से सिद्ध होता है कि इनका विवाह-हुआ था +।"

एक लेख में, जो ज्येष्ठ सं० १९९१ की 'मर्यादा' पत्रिका में प्रकाशित हुआ, श्रीइंद्रनारायणसिंहजी ने गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य बाबा रघुवरदास-रचित 'तुलसी-चरित'-नामक एक पुस्तक का उल्लेख किया है। इनका कथन है, गोस्वामीजी राजा-

---

* दि इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द २२, १८९३ ई०। पृष्ठ २६४-२६८।

+ हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (श्रीरामकुमार वर्मा), पृष्ठ ३६१।

पुर में सरयूपारीण ब्राह्मण मुरारि मिश्र के यहाँ उत्पन्न हुए। उनके दो बड़े भाई थे गणपति और महेश, एवं मंगल-नामक एक छोटा भाई था। गोस्वामीजी के तीन विवाह हुए। सबसे पिछली पत्नी कंचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती थी, जिसके कारण उसके पति ने विरक्त हो संन्यास ग्रहण किया। परंतु यह पुस्तक अभी तक किसी दूसरे पुरुष के दृष्टिगोचर नहीं हुई। राय-बहादुर श्यामसुंदरदास और डॉक्टर पीतांबरदत्त बड्थ्वाल ने इसे महत्त्व नहीं दिया, और मिश्रबंधुओं ने भी इसे प्रमाण नहीं माना*।

तुलसी-चरित में लिखा है, गोस्वामीजी ने भट्टोजी दीक्षित के व्याकरण-ग्रंथ और नागेश भट्ट का शेखर पढ़ा था। स्मरण रहे, गोस्वामी तुलसीदास का देहावसान १६२३ ई० (सं० १६८०) में हुआ, और भट्टोजी १६३० ई० (सं० १६८७) में प्रकाश में आए; शेखर तो ईसा की १८वीं शताब्दी के प्रारंभ की रचना है। अतएव तुलसी-चरित नितांत अप्रामाणिक है। मैंने इस विषय का विशेष विवेचन "तुलसी-चर्चा"-नामक ग्रंथ और 'नवीन भारत' के तुलसी-अंक (मार्च १९४१) में किया है। स्थानाभाव के कारण मैं यहाँ इस विषय को विस्तार देना नहीं चाहता।

भक्त-कल्पद्रुम और हिंदी-नवरत्न के रचयिता तुलसीदास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण की पदवी प्रदान करते हैं। काष्ठजिह्व स्वामी उन्हें पाराशरगोत्रीय दुबे पतिऔजा बतलाते हैं, एवं ठाकुर शिवसिंह, पं० रामगुलाम द्विवेदी और सर जॉर्ज ग्रियर्सन किंवदंती के आधार पर उन्हें सरवरिया-कुल से संबद्ध करते हैं।

स्वर्गीय पं० रामचंद्र शुक्ल गोस्वामीजी को सरयूपारीण

---

* गोस्वामी तुलसीदास (बाबू श्यामसुंदरदास और डॉ० पीतांबरदत्त बड्थ्वाल) मिश्रबंधु-विनोद प्रथम भाग, पृष्ठ २६८-२९१। तुलसी-ग्रंथावली प्रस्तावना, पृष्ठ १७।

ब्राह्मण सिद्ध करने के उत्सुक हैं, और इसके लिये आप पूर्वोक्त तुलसी-चरित का सहारा लेते हैं, जिसे आज तक बाबू इंद्र-नारायणसिंह के अतिरिक्त किसी दूसरे ने नहीं देखा, जैसा शुक्लजी ने स्वयं स्वीकार किया है ॐ। वह सदा से प्रमाणीभूत इस कथोपकथन को जानते-मानते हैं (जिसका समर्थन ग्रियर्सन, ग्रौज्ज एवं अन्य यौरप-निवासी लेखक भी करते हैं) कि गोस्वामी तुलसीदास आत्माराम और हुलसी के पुत्र थे, दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से उनका विवाह हुआ, तारापति नाम का उनके एक पुत्र हुआ, जो जन्म से थोड़े ही दिन पीछे परलोकगामी हो गया। तथापि शुक्लजी इस निर्णय की ओर झुके प्रतीत होते हैं कि गोस्वामीजी मुरारि मिश्र के पुत्र थे, उनके तीन विवाह हुए, और अंतिम विवाह बुद्धि-मती से हुआ। ऐसा क्यों? क्योंकि 'तुलसी-चरित' ऐसा कहता है। वह ग्रियर्सन की इतनी सम्मति को तो उचित समझते हैं कि गोस्वामीजी राजापुर में और सरयूपारीय ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए, किंतु इससे आगे वह नहीं मानते। अपने अभिप्राय-साधन के निमित्त वह 'राम-बोला' शब्द की क्लिष्ट-कल्पित निरुक्ति 'राम ने अपना बोल दिया' करते हैं, इसी प्रकार 'जनमि'-शब्द का अर्थ बतलाते हैं 'जिसने जन्म दिया है' †। विनय-पत्रिका और कवितावली के जिन वाक्यों का अर्थ पं० सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वान् यह करते हैं कि तुलसीजी को बचपन में माता-पिता ने त्याग दिया था, उन्हीं वचनों के अनुसार शुक्लजी की सम्मति है तुलसीदास बचपन में अपने माता-पिता द्वारा काम-धंधे में मन न लगने के कारण अलग कर दिए गए। इन सब बातों को शुक्लजी ने 'तुलसी-चरित'-रूप गोप्य निधि के आधार पर माना था।

ॐ तुलसी ग्रंथावली (प्रस्तावना), पृष्ठ १७।

† तुलसी-ग्रंथावली (प्रस्तावना), पृष्ठ २४-२८।

शुक्लजी इस बात को स्वीकार नहीं करते कि नंददास तुलसीदासजी के संबंधी थे। बिना किसी युक्ति या प्रमाण के उनका कथन है कि 'दो सौ बावन वैष्णव-वार्ता' की ख्याति के तुलसीदास दूसरे तुलसीदास थे, जो सनाढ्य ब्राह्मण थे। उक्त 'वार्ता' के अनेक स्थल सिद्ध करते हैं कि गोस्वामीजी रामायण के कर्ता एवं नंददास के भाई थे, और काशी, चित्रकूट आदि में उनका निवास रहता था *। जब बैजनाथदासजी तुलसीदास और नंददास

---

* "सो बड़े भाई तुलसीदास हते और छोटे भाई नंददास हते। सो वे नंददास पढ़े बहुत हते और तुलसीदास तो रामानंदजी को सेवक हतो। सो तब नंददास हू को रामानंदजी का सेवक करायो।

× × ×

"सो तब कितनेक दिन में वह संग काशी में आय पहुँच्यो। तब नंददास के बड़े भाई तुलसीदास हते सो तिनने सुनी जो यह संग मथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा संग में आयके पूछ्यो जो उहाँ श्रीमथुराजी में श्रीगोकुल में नंददास नाम करिके एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो सो पढ़िल वहाँ सुन्य हतो सो काहू ने देख्यो होय तो कहो तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों कही जो एक सनोढीया (सनाढ्य) ब्राह्मण है सो ताको नाम नंददास है सो वह पढ्यो बहुत है सो वह नंददास तो श्रीगुसाईंजी को सेवक भयो है।

× × ×

"और एक समय नंददास को बड़ो भाई तुलसीदास व्रज में आयो ता पीछे श्रीमथुराजी में तुलसीदास आये सो तब आयके पूछी जो यहाँ श्रीगुसाईंजी को सेवक नंददास कहाँ रहत है ....तब तुलसीदास ने नंददास के पास आयके कह्यो सो

को एक ही गुरु के शिष्य बतलाते हैं, तब शुक्लजी कहते हैं कि यह कैसे हो सकता है कि एक गुरु के दो शिष्य दो विभिन्न संप्रदायों (रामकृष्ण) के अनुगामी बनें। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या गुरुशब्द विद्या-गुरु और दीक्षा-गुरु का वाचक नहीं? क्या यह असंभव है कि दो बालकों अथवा पिता के दो पुत्रों का विद्या-गुरु एक पुरुष हो, और दीक्षा-गुरु उससे भिन्न दूसरा पुरुष? यही क्यों? शुक्लजी को तो 'सोरों गोस्वामी तुलसीदास की जन्म-भूमि

नंददास तू ऐसे कठोर क्यों भयो है . ...तेरो मन होय सो अजोध्या में रहियो तेरो मन होय सो प्रयाग में रहियो चित्रकूट में रहियो।

× × ×

"सो एक दिन नंददासजी के मन में ऐसी आई जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है सो हमहूँ श्रीमद्भागवत भा पाकरें।"—दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता।

"जो मर्यादा मार्ग मे श्रीरामचंद्रजी के भक्त तुलसीदास बहोत बड़े वैष्णव हते ताके अनेक पद हैं। रामायण ग्रंथ पद्य बंध कवित बंध चौपाई बंध ऐसे अनेक कीने हैं ××× उनके भाई नंददासजी बहोत विषयी हते ×× श्रीगोकुल आयके श्रीगुसाईंजी की शरण आये और पुष्टि में प्रख्यात भये ××× पिछे तुलसीदासजी भाई की खबर लेवे ब्रज में आये। सो एतो राम उपासी हते और ब्रज में तो सब ठिकाणे कृष्ण-कृष्ण की धुनि सुनी। तब तुलसीदास ने एक साखी कही ××× पीछे भाई सों मिले तब कह्यो जो तैंने व्यभिचार धर्म क्यों कीनो अपने प्रभु कों छोडि अन्य धर्म के आचरण क्यों करतहै। अब पिछो चालि"

—बावन वचनामृत
(गोस्वामी श्रीकाका वल्लभजी महाराज-कृत)

है' यह कहना तक नहीं सुहाया। आपका विश्वास है, शूकरक्षेत्र ज़िला एटा के अंतर्गत सोरों नहीं, किंतु 'गोंडा' का शूकरक्षेत्र है। परंतु आपने अपने इस विश्वास की सत्ता में कोई युक्ति नहीं दी है *। पं० माधवप्रसादजी त्रिपाठी का कथन है कि शूकरक्षेत्र सोरों ही है, और ग्रीयर्सन साहब भी इसी मत के पोषक हैं †। कासगंज वास्तव्य मेरे सुयोग्य मित्र पं० भद्रदत्तजी सर्व-प्रथम सज्जन हैं, जिन्होंने प्राचीन लेखों द्वारा अत्यंत संदेहशील व्यक्ति के भी सम्मुख यह सिद्ध कर दिया है कि सोरों, शूकरक्षेत्र और वाराहक्षेत्र एक ही स्थान है ‡। स्थानाभाव से मैं यहाँ उनकी बुद्धि-गम्य और निश्चायक युक्तियों को, जो लेख-प्रमाणों के सुदृढ़ आधार पर निरूढ़ हैं, उपस्थित नहीं करता।

लगभग १९ वर्ष हुए, बाबा वेणीमाधवदास-कृत 'मूल गोसाईं-चरित'-नामक एक पुस्तक अकस्मात् आ गई। इसमें लिखा है, तुलसीदास सं० १५५४ वि० श्रावण की सप्तमी को राजापुर में उत्पन्न हुए। उनकी माता हुलसी का देहांत इनके जन्म से पाँचवें दिन हो गया। वह अपने पुत्र तुलसी के पालन का भार मुनिया नाम की एक दासी को दे गईं, क्योंकि पिता बालक का परित्याग कर देना चाहते थे। तुलसी का पालन-पोषण मुनिया की सास चुनिया ने किया। परंतु जब सर्प-दंश से उसकी

---

* हिंदी-साहित्य का इतिहास (पं० रामचंद्र शुक्ल), पृष्ठ १५६ (नवीन संस्करण)।

† तुलसी-ग्रंथावली, निबंधावली, पृष्ठ ४२।

‡ नवीन भारत (तुलसी अंक) जनवरी, १९४१। तुलसी चर्चा (नागरी-प्रेस, कासगंज), पृष्ठ ३०-६४।

निम्न-निर्दिष्ट हस्त-लिखित पुस्तकों में से नं० ७ और ८ कासगज वास्तव्य मेरे सुयोग्य मित्र पं० हरगोविंद पंडा के निजी पुस्तकालय से मिलीं। नं० २ (अ) बदायूँ-वासी बाबू गयाप्रसाद द्वारा स्वर्गीय पं० शिवनारायणजी वैद्यराज के पुस्तकालय से प्राप्त हुईं, और शेष सोरों-वासी पूर्वोक्त पं० गोविंदवल्लभ भट्ट से।

१—गोस्वामी तुलसीदासजी की अर्धांगिनी रत्नावली की जीवनी 'रत्नावली-चरित'। इसकी रचना पं० मुरलीधरजी चतुर्वेदी ने की थी, जिनका जन्म सं० १७४६ वि० में हुआ। इस बात को दो सौ चालीस वर्ष से अधिक हो गए, अर्थात् ९८ वर्ष रत्नावली की और ६९ वर्ष तुलसीदासजी की मृत्यु के पीछे। दो हस्तलिपियाँ इस विषय में प्राप्त हैं। उनमें से एक को तो स्वयं ग्रंथकर्ता ने सोरोंक्षेत्र में श्रावण शुक्ला १ भृगुवार सं० १८२९ वि० अर्थात् शुक्रवार ३१ जुलाई, १७७२ ई० को पूर्ण किया। उसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीरत्नावलीचरितं सम्पूर्णम् शुभम्। संवत् १८२९ श्रावण शुक्ला १ प्रतिपदायाम् शुक्रवासरे लिपितम् चतुर्वेदमुरली-धरेण सोरोंक्षेत्रे। शुभं भवतु॥ दूसरी प्रतिलिपि उनके शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने सोरों में मार्गशीर्ष शुक्ला ६ शनिवार सं० १८६४ वि० तदनुसार शनिवार ५ दिसंबर १८०७ ई० को की थी। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—इति श्रीरत्नावली संपूरणम् लिपितम् श्रीमुरलीधरचतुर्वेदिशिष्येन रामवल्लभमिश्रेण सोरों मध्ये मंगल १८६४ ॥ मार्गशिरमासे शुक्लपक्षे ६ शनिवासरे। कृष्णाय नमः। शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् भूयात्।

२—रत्नावली-रचित दोहे, जो अब तक अज्ञात रहे, हस्त-लिखित चार संस्करणों में प्राप्य हैं, अर्थात्

(अ) रत्नावली-कृत दोहा-रत्नावली। यह २०१ दोहों का संग्रह

है, जिसको श्रीगोपालदास ने बदायूँ-निवासी मुंशी माधवराय कायस्थ सक्सेना के निमित्त सं० १८२४ वि० के भाद्रपद कृष्णा अमावस्या सोमवार अर्थात् सोमवार २४ अगस्त १७६७ ई० को किया था। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीरतनावलिकृत दोहा रतनावलीसंपूर्ण ॥ संवत् १८२४ ॥ भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे ३०अमावस्याम् सोमवासरे ॥ लिषितम् गोपालदासेन मुंशी माधौराइ निमित्तम् शुभम् भवतु ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ मंगलं भगवान् विष्णुमंगलं गरुडध्वजं; मंगलं पुण्डरीकाक्ष मंगलायतनो हरिः ॥ १ ॥ शुभम्"

(अ) दोहा रत्नावली। दो सौ एक दोहों का यह संग्रह श्रीगंगाधर ब्राह्मण द्वारा वाराहक्षेत्र (जोगमार्ग के समीप) सं० १८२९ वि० भादों सुदी ३ सोमवार अर्थात् सोमवार ३१ अगस्त १७७२ ई० को किया गया। पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्रीसाधवी रतनावलि की दोहारतनावली संपूरनम् शुभम् संवत् १८२९ भादों शुदि ३ चंद्रे लिपितम् गंगाधर ब्राह्मण जोगमारगसमीपे वाराहक्षेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु।"

(इ) रत्नावली लघु दोहासंग्रह अर्थात् रत्नावली के बनाए १११ दोहों का छोटा संग्रह। इसे पं० रामचंद्र ने सं० चैत्र कृष्णा १३ भृगुवार संवत् १८७४ तदनुसार एप्रिल १८१७ ई० में संग्रह किया—"इति श्रीरतनावलि लघु दोहा-संग्रह संपूर्णम् ॥ लिखित-मिदम् पुस्तकम् पंडित रामचंद बदरियाग्रामे शुभ संवत् १८७४ चैत्र कृष्णा १३ भृगुवासरे। ॐ नमो भगवते वराहाय। शुभम् भूयात्।

॥ इति ॥

छ ॥ [illegible] ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥"

(ई) रत्नावली लघु दोहा संग्रह। यह भी रत्नावली के १११ दोहों का संग्रह है। यह संकलन ईश्वरनाथ पंडित ने सोरों में

रत्नावली

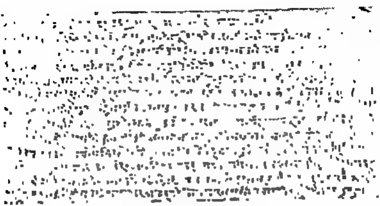

दोहा-रत्नावली
श्रीगंगाधर ब्राह्मण की हस्त-लिपि, संवत् १८२१

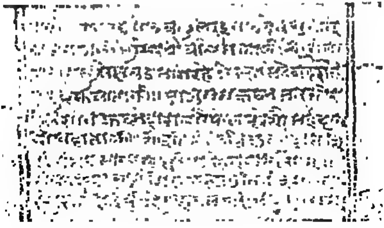

कवि कृष्णदास-कृत 'वर्षफल'
रघुनाथ की हस्त-लिपि, संवत् १८७२

माघ शुक्ला १३ सोमवार संवत् १८७५ तदनुसार सोमवार ८ फ़रवरी १८१६ ई० को किया। "इति श्रीरतनावली लघु दोहासंग्रिह संपूरनम् ॥ लिपितम् ईसुरनाथ पंडीत सोरों जी मिती माह सुदी तेरसि १३ सोमवार संवत् १८७५ में ॥ गंगा ॥"

३ श्रीरामचरित-मानस का बालकांड। इसकी प्रतिलिपि बनारस में रघुनाथदास ने वि० सं० १६४३ और शक सं० १५०८ में नंददास के पुत्र कृष्णदास के लिये की थी—"इति श्रीरामचरित्र मानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमल (वै) राग्य संपादिनी नाम १ सोपान समाप्तः संवत् १६४३ शाके १५०८''' '' वासी नंददास-पुत्र कृष्नदास हेत लिपी रघुनाथदास ने कासीपुरा में।"

४—रामायण का आरण्यकांड। इसकी प्रतिलिपि सोरोंक्षेत्र-निवासी अपने भ्रातृपुत्र कृष्णदास के लिये गुरु श्रीतुलसीदास ने आज्ञा देकर लछमणदास से आषाढ़ सुदी ४ भृगुवार सं० १६४३ वि० अर्थात् शुक्रवार १० जून १५८६ ई० को कराई—"इति श्रीरामायने सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलवैराग्यसंपादनि षट्सुजनसंवादे रामवनचरित्रवर्ननो नाम तृतियो सोपान आरन्यकांड समाप्त !! ३ !! श्रीतुलसीदास गुरु की आग्या सों उनके भ्रातासुत कृष्णदास सोरोंक्षेत्र-निवासी हेत लिषितं लछिमनदास कासीजी मध्ये संवत् १६४३ आषाढ़ सुद ४ सुके इति"

५—शूकरक्षेत्र-माहात्म्य। इसकी रचना कृष्णदास ने की। इस प्रति में कुछ छंद मुरलीधर चतुर्वेदी रचित भी हैं। इन दोनों की प्रतिलिपियाँ साथ-साथ सोरों में शिवसहाय कायस्थ ने कार्त्तिक बदी ११ बुधवार* सं० १८७० वि० तदनुसार बुधवार १७ नवंबर १८१३ को पूर्ण की। इससे तुलसीदास और नंददास के कुटुंब पर

* किंतु ११ अधिकांश में बृहस्पतिवार को थी, बुध को नहीं।

पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—"श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते वराहाय ॥

अथ कृष्णदास-कृत सूकरक्षेत्रमहात्म भाषा लिष्यते ।

सोरठा

गनपति गिरा गिरीश गिरजा गंगा गुरु चरन ।
बदहुँ पुनि जगदीश छुनि बराह महि उद्धरन ।
बदहुँ तुलसीदास पितु बड भ्राता पद जलज ।
जिन निज बुद्धि विलास रामचरितमानस रच्यो ।
सानुज श्रीनददास पितु को बदहुँ चरन रज ।
कीनो सुजस प्रकास रास पच अध्याय भनि ।
सबहुँ कमला मान बदहुँ पद रतनावली ।
जासु चरनजल जान सुमिरि लहहिं तिय सुरथला ।
सुकुल यम दुज मूल वितरन पद सरसिज नमहुँ ।
रहहिं सदा अनुकूल कृष्णदास निज श्रम गनि ।

× × ×

लेखकपाठकयो शुभ भूयात् ॥ सवत् १८०० मिती कातिक बदी ११ एकादसी बुधवासरे ॥ लिषित शिवसहाय कायस्थ सोरोंमध्ये ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ अथ मुरलीधर-कृत छप्पै लिष्यते ॥ जय-जय आदि बराहक्षेत्र तपभूमि सुहावनि ॥ इति छप्पै सपूर्णम् ॥ कृष्णदास-वंसावली नददास सुत हो भयो कृष्णदास मतिमद ॥ चददास बुध सुत भये चिरजीवी मजचद ॥ १० ॥ इति ॥

मुरलीधर चतुर्वेदी हस्त लिखित प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—
इति श्रीभाषा शूकरक्षेत्रमाहात्म्य सपूर्णम् सं वत् १८०६ लिखितम् च० मुरलीधरेण ।"

६—प्रियादास रचित 'भक्तिरसबोधिनी' पर सेवादास की

टीका। भक्तिरसबोधिनी नाभादास-कृत भक्तमाल की टीका है। सेवादास ने अपनी टीका मार्गशीर्ष शुक्ला १० बृहस्पतिवार सं० १८६४ वि० तदनुसार गुरुवार ७ दिसंबर १८३७ में लिखी। इससे तुलसीदास, रत्नावली और नंददास पर कुछ प्रकाश पड़ता है, और इसमें रत्नावली के पिता के निवासस्थान बदरी का भी उल्लेख मिलता है।

श्रीनाभादासजी ने अपने भक्तमाल में गोस्वामीजी के विषय में केवल एक छंद लिखा है, जो इस प्रकार है—

त्रेता काव्य निबंध करी शत कोटि रमायन।
इक अक्षर उधरै ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम चरन रस मत्त रहत अहनिश व्रतधारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥१॥

इस पर टीका में प्रियादास जी ने अनेक छंद लिखे हैं, एक इस प्रकार है—

तिया/निसा सों सनेह बिन पूछे पिता गेह गई।
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आए हैं।
वधू अति लाज भई रिस सों निकस गई।
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं।

उक्त छंद में 'वाही ठौर' को स्पष्ट करते हुए सेवादासजी अपनी टीका में इस प्रकार लिखते हैं—

"सूनो लखि गेह उमड़यो तिय - सनेह जिय
रत्नावलि दर्श हेत नैन अकुलाये हैं।

भादों की अरध राति चपला चमकि जाति
मंद मंद बिंदु परैं घोर घन छाये हैं।
ऐसे मे तुलसी पेत सूकर सों मोद भरे
चपल चाल चलत जात गंगाधर धाये हैं।
शव पै सवार ह्वै गंगधार पार करी।
वदरी ससुरारि जाय पौरिया जगाये हैं।

भक्तमाल में नाभाजी ने नंददासजी के विषय में इस प्रकार लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि नंददासजी रामपुर ग्राम के रहने-वाले थे—

लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयधलौं सुजस रामपुर ग्राम-निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी।
चंद्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पथ में पगे;
श्रीनंददास आनंदनिधि रसिक सुप्रभुदित रंग मगे ॥२॥

सेवादास की टीका में नंददास का जो उल्लेख है, उससे स्पष्ट है कि नंददास और तुलसीदास का कुछ-न-कुछ संबंध अवश्य था।

सेवादास की टीका का प्रारंभ इस प्रकार होता है—

"श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ श्रीहरिगुरु वैष्णवेभ्यो नमः ॥ अथ श्रीभक्तमाल टीका सहित लिख्यते ॥ तहाँ अर्थ भक्तमाल मैं लिष्या है ॥ भक्त भक्ति भगवत गुरु ॥ सो. चारि सरूप लिपे हैं। तहाँ हरि का सरूप न लिष्यो जाय कठिन है ॥... . इति श्रीभक्त-माल टीका रसत... गर स्थान को नाम लिख्यते ॥

(चौ) पाई—श्राव... ...सवारा तामें सत अनेक प्रकारा
वंसीवट गोपेश्वर पास ग्यान गूदरी आगैं वास ॥१॥

तहाँ छेतर गतनाम को जानौं मव सुप धाम सुशसहि मानौं।
मूरति तीन रहैं जहां छाये, सुपप्रद नाम जानि सब आये।

दोहा—तिन मधि संतसरोमनी सत्र परिपूरन काम
भरणागत प्रतिपाल हैं नाम श्री१०८ साधूराम॥ १॥
तिनकी पादत्राण को रक्षक सेवादाम
जन्म-जन्म यह बंदगी दाजे और न आस॥ २॥
सदा नाग आनंद में घड़ी पल छि र दिन रैन
कबहुँ दुप ब्यापे नहीं रहत हैं सुप के अैन॥ ३॥
सेवादास दसकत लिपें तामें पाट अपार
पंडित सुरता संत जन लीज्यो दुधि सुधारि।

संमत् साल लिख्यते॥

अगहन सुकला दशमी वार वृहस्पत जानि
संवत् १८सै लिपै साल चौराणवा मांनि।

१ श्रीहरी पुर सत्योमजी म्हाराजि की कृपा मसांद है।
रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं
" रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं रं"

७—नंददास-कृत मूलगोत के दो पत्रे। इनकी प्रतिकृति बाल-कृष्ण ने नंददास के पुत्र एवं अपने गुरु कृष्णदास की प्रेरणा से सोरौं में माघ कृष्णा ३ सोमवार को सं० १६७२ वि० तदनुसार सोमवार ६ फ़रवरी, १६१६ ई० में की थी। इससे गोस्वामी तुलसीदासजी के वंश पर प्रकाश पड़ता है, और इससे पता चलता है कि उनका गोत्र भारद्वाज तथा शासन 'शुक्ल' था। वह सनाढ्य ब्राह्मण थे और रामायण के रचयिता भी। ये पत्रे बहुत कुछ जीर्ण-शीर्ण और भंगुर हैं। इनकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

रही नाइ सुध कोऊ राम रोम प्रति गोपिका है गई सिगरे गात कल्प तरावर सांवरा ब्रज वनिता भई पात जहि अंग अंग ते ॥ ......॥ हो मोभतु हो मपा मलो पठया सुधि लावन योगुन हमरे आनि तहां ते लग्यो बतावन उनमें मा में है सपा छिन भर अंतर नाहि जो देपो मा मांहि वे मेंह। उनहीं माहि तरग और वारि जो॥ ... ॥गापी रूप विघाय अंग करिके य माली ऊधौ भ्रम निवार...... । ....भ्रमरगीत सरपुरनम... ....त नंददास भ्राता

तुलसीदास की स्याम सखासी सोरोंजी मध्ये लिखितं कृष्णदास शिष्य बालकृष्ण आज्ञानुसार गुरु कृष्णदास बेटा नंददास नाती जीयाराम के शुक्ल स्यामपुरी सनाढ्य .... रद्वाज गोती सचिदानंद के बेटा आत्माराम... के बेटा रामायन के करता तुलसीदास दूजे......दा नंददास चंद्रहास तिनके बेटा कृष्णदा . ..सके बेटा मजचद पोथी लिखी माव . .. । ेज चंद्रवार संवद् १६७२ शुभम्।

न किथी सो २ह लीला गाइ पाइ रम पुंजना
वदौं तुलसीदास के चरना सानुज नंददास
दुख हरना जिन पितु आत्माराम सुहाए
जिन सुत रामकृष्ण जस गाऐ (नं) द सुवन
सम गुरु प्रवीना दास कृष्ण मम नाम सो चीना
शुक्ल सनाढ्य तेज गुणरासी धर्म धुरीण
स्याम सर वासी बालकृष्ण में उन कर दा (सा)
(सू) कर क्षेत्र जान मम वासा... स्र ॥

८—'वर्षफल'। इस पुस्तक को कृष्णदास ने विक्रमी सं० १६८७

नभमास कृष्णा त्रयोदशी शनिवार (१६०० ई०) को लिखकर समाप्त किया एवं सं० १८७२ वि० मार्गशीर्ष कृष्णा २ गुरुवार अर्थात् कार्तिकादि संवत् गणना के अनुसार गुरुवार २६ दिसंबर १८१४ ई० को भानुदत्त के शिष्य और उपाध्याय सोमनाथ के पुत्र रुद्रनाथ ने बदायूँ प्रांत के सहसवान ग्राम में इसकी प्रतिलिपि की थी। यह फलित ज्यौतिष की एक छोटी-सी पुस्तक है, जिसको ग्रंथकर्ता ने अपने विद्वान् पितृव्य चंद्रहास की इच्छा से लिखा था। पुस्तक समाप्त करने से पूर्व ग्रंथकर्ता ने अपने वंश के विषय में थोड़ा संकेत किया है कि मैं नददास का पुत्र हूँ, जो जीवाराम शुक्ल ब्राह्मण के पुत्र थे, और मेरे पिता नंददास ने अपने ग्राम का नाम रामपुर से बदलकर श्यामपुर रख लिया था। उन्होंने दुःख के साथ इसका भी वर्णन किया है कि रत्नावली की जन्म-भूमि बदरी को गंगाजी की बाढ़ ने नष्ट कर दिया था। यह बाढ़ सं० १६२७ वि० आषाढ़ मास के अंत में आई थी। आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं—

"श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ वर्षफल लिख्यते। कवित्त

गनपति गिरीस संत गौरी गुरु गीरबान
गोद्व बेस गोकुलेस गोपी गुन गाइके।
भूमि देव देव द्विवि गाम धाम देवी देव
तात मात पाद कंज मंजु सीस नाइके।
सूर सोम भौम मौम देवगुरु दैत्यगुरु
शुक्र शनि राहु केतु पेट मन लाइके
बाल बोध भास कवि दाम दास कृष्णदास
भापतु हौं वर्षफल वर्षग्रंथ ध्याइके ॥ १ ॥

अथ सूर्यफल—दोहा

वर्ष लगन रवि वात पित कफ विवाद तिय रोग ;
कृष्ण चित्त चिंताकुलित करत हरत सुष भोग ॥ १ ॥

× × ×

तात अनुज चंद्रहास बुधवर निरदेसहि धारि ;
लिष्यौ जथामति वर्षफल बाल बोध सम्हारि ॥ २ ॥

कवित्त

कीरति की मूरति जहाँ राजै भगीरथ की
तीरथ वराह भूमि वेदनु जे गाई है ;
जाही धाम रामपुर स्याम सर काने तात
स्यामायन स्यामपुर बास सुषदाई है ।
सुकुल विप्रवंस मे विग्य तहाँ जीवाराम
तासु पुत्र नंददास कीरति कवि पाई है ।
तासु सुत हौं कृष्णदास वर्षफल भाषा रच्यौ
चूक होइ साधै मम जानि लघुताई है ॥ १ ॥
सोरह सौ सत्तामनि विक्रम के वर्ष माँझ
भई अति कोपदृष्टि विश्व के विधाता की ।
बीतत अषाढ़ो बाढ़ लाई बढ़ि देवधुनि
बूढ़ी जल जन्मभूमि रत्नावलि माता की ।
नारी नर बूढे कछु सेस बड भाग रहे
चिह्न मिटे बदरी क दुपद कथा ताकी ॥
आजु नभ कृष्ण मास तेरसि सनि कृष्णदास
वर्ष फल पूर्यौ भई दया बोध दाता की ॥ २ ॥

इति श्रीकवि कृष्णदासविरचितम् भाषावर्षफलम् सम्पूर्णम् संवत् १८७२ मार्गसिर कृष्णा तृतिया ३ गुरुवासरे सहसवान नगरे ॥ शुभम् ॥ शुभम् ॥"

उक्त पुस्तक के अंतिम १८वें पृष्ठ पर यह पुष्पिका है—

"इति सुग्धा दशा विचार। गुरुवर भानुदत्त शिष्येन उपाध्या सोमनाथ पुत्रेन रुद्रनाथेन लिपितम्। सं० १८७२ मार्गशिर कृष्ना ४ पितृवासरे। कादचित उक्त रुद्रनाथ को अपने गुरु भानुदत्त और पिता सोमनाथ के नामानुसार 'गुरुवार' और 'पितृवासर' शब्दों से रविवार और सोमवार अभीष्ट है।

हस्त-लिपियाँ नं० ५ और ७, जैसा ऊपर संकेत किया गया है, गोस्वामी तुलसीदास, नंददास और कृष्णदास की वंशावली का वर्णन करती हैं। पहली तो नारायण शुक्ल से और पिछली सच्चिदानंद से नीचे की ओर चलती है, जैसा निम्नांकित वंशावली-वृक्ष से प्रकट है—

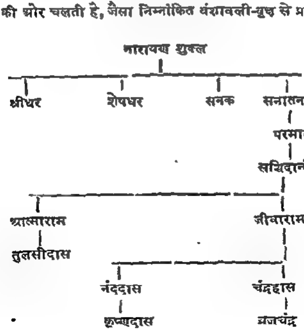

इन गवेषणाओं एवं वर्तमान प्रकाशित कुछ साहित्य के प्रकाश

में विषय के सिंहावलोकन से रत्नावली की जीवनी और उसके पति गोस्वामी तुलसीदास के आरंभिक जीवन का वृत्त इस प्रकार चलता है *:—

* अन्य लेखकों की कुछ सम्मतियाँ—

"तुलसीदासजी के गुरु स्मार्त वैष्णव थे।" रामचरित-मानस सटीक (बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०)

"वास्तव में तुलसीदास के शिक्षा और दीक्षा के गुरु सोरों-निवासी नरसिंहजी थे, जो स्मार्त वैष्णव थे।"

रामचरित मानस सटीक भूमिका पृष्ठ ८५ (पं० रामनरेशजी) "वे (तुलसीदास) स्मार्त वैष्णव थे।" रामचरित मानस सटीक (पं० बाबूराम मिश्र टीकाकार) (हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, कलकत्ता)। "दियो सुकुल जनम शरीर सुंदर हेतु जो फल चारिको।" विनय-पत्रिका (तुलसीदास)

" द्विज सनौढ्या पावन आनो"

रानी कैवलकुँवरि देवजू रियासत सरीला जिला हमीरपुर-कृत गोस्वामी तुलसीदासजी का जीवन चरित सं० १६५२ का छपा।

"नंददास सनोढिया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई एवं देश के रहनेवाले थे।"

"गोस्वामीजी का विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या से हुआ था। तारक नाम का पुत्र हुआ था।"

गोस्वामी तुलसी कृत रामायण, टीकाकार पं० सीताराम मिश्र लखीमपुर, खीरी

"तुलसीदास ने अपना विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या से कर लिया।"

रामचरित मानस रामायण टीका-सहित, टीकाकार—सूरजभान अग्रवाल।

तुलसीदास के पूर्व-पुरुष रामपुर में रहते थे, जिसका

"दीनबंधु पाठक ने गुसाईंजी को एक सुयोग्य रामभक्त जानकर अपनी गुणवती कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया।"

तुलसी-कृत रामायण—टीकाकार, पं० रामेश्वर भट्ट १९०२ ई०

"इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ।"

तुलसी-कृत रामायण, संजीवनी टीका, वि० मा० पं० ज्वाला-प्रसाद मिश्र।

"प्रसिद्ध है कि दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से इन (तुलसीदास) का विवाह हुआ था। जिसके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था।"

गोस्वामी तुलसी-कृत रामायण, टीकाकार पं० नारायणप्रसाद मिश्र, लक्ष्मीपुर, खीरी।

"वनिता से अति प्रेम लगायो, नैहर गई सोच उर छायो
सुरसरि पार गए घबराई एक मुरदा की नाव बनाई।"

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित—रानी कँवलकुँवरि देवजू

स्व० बाबू राधाकृष्णदास (भूमिका रामपंचाध्यायी) "वे (गोस्वामी तुलसीदास) सनाढ्य ब्राह्मण थे और शुक्ल थे।" भूमिका रामचरित-मानस सटीक, पृ० ७९ (पं० रामनरेश त्रिपाठी)।

बाबू श्यामसुंदरदास और स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल ने किन्हीं तुलसीदासजी को सनाढ्य और नंददास का भाई तो माना है, पर उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदास दूसरे थे, किंतु उन्होंने इस विषय में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया है।

अब तक के मत

राजापुर जन्मभूमि, सरयूपारी—
शिवसिंह सेंगर

नाम पीछे से नंददास ने श्यामपुर रख लिया था। यह ग्राम

सर ज्यॉर्ज ग्रियर्सन (नोट्स ऑन तुलसीदास, इंडियन ऐंटीक्वेरी)
तुलसी-चरित
मूल गोसाईं-चरित
हिंदी-लिटरेचर (एफ़० ई० की०)
तुलसी-ग्रंथावली
हिंदी-साहित्य का इतिहास (शुक्ल)
हिंदी-भाषा और साहित्य (श्यामसुंदरदास)
गोस्वामी तुलसीदास (,,)
रामचरित-मानस, सटीक और अटीक (,,)
हिंदी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (सूर्यकांत)
सोरों जन्मभूमि, सनाढ्य-शुक्ल—
दोहा रत्नावली ,
रत्नावली चरित्र
भ्रमरगीत (बालकृष्ण की प्रति)
सूकरक्षेत्र महात्म (कृष्णदास)
वर्षफल (,,)
कृष्णदास-वंशावली (,,)
बेनीदास की टीका
दो सौ बावन वैष्णव-वार्ता
रामचरित-मानस टीका (रामनरेश त्रिपाठी)
तुलसीदास और उनकी कविता (,,)
रासपंचाध्यायी (भूमिका) (राधाकृष्णदास)
"द्विज सनौढिया पावन जानों"—रानी कँवलकुँवरि देवजू-कृत गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित्र।

एटा ज़िले में सोरों * से प्रायः दो मील पूर्व में स्थित है। कतिपय

कान्यकुब्ज—	
भक्तकल्पद्रुम	
हिंदी-नवरत्न	
हिंदी लिटरेचर (की०)	
दुबे पतिऔजा पराशरगोत्री—	
कार्ष्णजिह्व स्वामी	
भारद्वाजगोत्री सनाढ्य शुक्ल—	
भ्रमरगीत (बालकृष्ण की प्रति)	

* ज़िला एटा में भागीरथी गंगा के तट पर सोरों स्थित है। एफ़० एस० ग्राउस महोदय की सम्मति में सोरों की उत्पत्ति इस प्रकार है—सूकर-ग्राम = सूग्रर गाँव = सूअरांउ = सोरों। सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों अत्यंत प्राचीन तीर्थ है। वाराहपुराण-वर्णित प्रायः सभी तीर्थ वहाँ विद्यमान हैं। नवीं शताब्दी में यहाँ सोलंकी वंश का सोमदत्त राजा राज्य करता था। कुछ ध्वंसावशेष अभी तक पाए जाते हैं। एक टीले पर प्राचीन इमारत है, जिसके खंभों पर बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के लेख प्राचीन लिपि में हैं। सोरों में गंगा-तीर पर राजा टोडरमल, महाराज उदयपुर, महाराज अलवर आदि नरेशों एवं अनेक सेठों के बनाए पक्के घाट, छतरियाँ, कुंज और धर्मशालाएँ हैं। यात्रियों की बड़ी भीड़ रहती है।

पूर्व काल में पश्चिम में भागीरथी गंगा की प्राचीन धारा बदरी और सोरों के बीच होकर बहती थी। अब ३-४ मील हटकर बहती हैं। अब सोरों में वाराह-घाट के सामने भागीरथी गंगा की नहर से जल आता है।

यही बदरी आजकल बदरिया नाम से विख्यात है। गंगा-तीर होने

विशेष परिस्थितियों के कारण इनके पिता पं० आत्माराम शुक्ल भारद्वाजगोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण को अपनी वृद्धा माता और पत्नी के साथ सोरों के योग-मार्ग मुहल्ले में आना पड़ा। परंतु उनके भाई उसी गाँव में रहते रहे। तुलसीदास के जन्म से कुछ ही दिन पीछे इनकी माता का देहांत हो गया, और कुछ ही काल के अनंतर पिता का भी। अतः उनकी रक्षा का भार उनकी बूढ़ी दादी के कंधों पर आ पड़ा।

के कारण यह स्थान न-जाने कितनी बार उजड़ा और बसा होगा। इतना तो ज्ञात है कि सं० १६६७ वि० में गंगाजी इसे बहा ले गई थीं और यह फिर उसी जगह बस गया।

गोस्वामी तुलसीदास के गुरु नृसिंहजी का मंदिर सोरों में अब भी, जीर्ण-शीर्ण दशा में, विद्यमान है। इस वर्ष उसमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। कहा जाता है, पहले इस मंदिर में हनुमान्‌जी की मूर्ति स्थापित थी, और गुरु नृसिंहजी उनके उपासक थे। कुछ वर्ष हुए, मंदिर के किसी अधिकारी ने इस मूर्ति को मंदिर के भीतर से हटाकर बाहर आँगन में, प्राचीन वट-वृक्ष के नीचे, स्थापित कर दिया। मंदिर के सम्मुख गली के कोने पर एक कूप है, जो नरसिंहजी का कुआँ कहलाता है। यह नृसिंह अथवा नरसिंहजी का मंदिर सोरों में प्रसिद्ध है। वृद्ध लोग कहते हैं, इसी में नृसिंहजी की पाठशाला थी। सोरों के पास ही नंददासजी के बसाए 'श्यामायन' (मंदिर खेड़ा) और श्यामसर (तालाब) एवं रामपुर (श्यामपुर)-नामक ग्राम विद्यमान हैं।

तीरथ वर सौकर निकट गाम रामपुर वास
सोइ रामपुर स्यामपुर करयौ पिता नंददास।
(कृष्णदास-कृत सूकरक्षेत्र-माहात्म्य)

बचपन में तुलसीदास राम-नाम का उच्चारण करते रहते थे, इसलिये इनका नाम 'रामबोला' या 'रामोला' प्रसिद्ध हो गया। यह अभी निरे बालक ही थे कि इनके पितृव्य जीवाराम भी अपने पीछे दो पुत्र छोड़कर स्वर्गवासी हो गए। इनमें से बड़े नंददास भगवान् कृष्ण के भक्त एवं व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे। इनके पुत्र थे कृष्णदास और पत्नी का नाम था कमला। जीवाराम के छोटे पुत्र चंद्रहास थे। इसमें संदेह नहीं कि अधिक कठिनाइयों के कारण सब लोग महादुःखी थे। तुलसी तथा नंद दोनो ही स्मार्त वैष्णव नृसिंहजी की प्रेम-पूर्ण देख-रेख में पढ़ते रहे, जिनकी पाठशाला और कुआ अब तक सोरों में, दीन-हीन दशा में, विद्यमान है, और जिनको तुलसीदास ने नत-मस्तक होकर निज रचित रामायण में प्रणामांजलि समर्पित की है।

तुलसी हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ, रूपवान् और सदाचारी बालक था। बड़ा होकर वह विविध विद्याओं का पारदर्शी विद्वान् बन गया। अतः पं० दीनबंधु पाठक और उनकी भार्या दयावती ने, सं० १५८६ वि० में, अपनी पुत्री रत्नावली का विवाह इसके साथ कर दिया। गणना से प्रतीत होता है कि रत्नावली का जन्म सं० १५७७ वि० में हुआ। यह बड़ी सुंदरी, धर्मात्मा, प्रतिभा-संपन्ना और विदुषी थी। पं० दीनबंधु बदरी के रहनेवाले थे; यही रत्नावली की जन्मभूमि थी। यह सोरों के सामने बसी है। उन दिनों बीच में गंगाजी बहती थीं। एक बार यह जल-मग्न हो गई थी, किंतु फिर बस गई, और बदरिया के नाम से अब तक चल रही है। परंतु गंगा-नदी अपना पुराना मार्ग छोड़कर चार मील हट गई हैं। आजकल सोरों और बदरिया के बीच कृत्रिम गंगा (नहर) बहती है, और वाराह-घाट हरिद्वार की हर की

पैरी अथवा बिठूर-घाट से कुछ-कुछ मिलता-जुलता है। सर्व-प्रिय रत्नावली ने सेवा-द्वारा अपनी सास को प्रेम के वशीभूत कर लिया, परंतु कुछ ही काल के अनंतर इसकी सास ने अपनी मानव-लीला का संवरण कर लिया। तुलसीजी पुराणों की कथा बाँचकर अपनी आजीविका चलाते थे, इससे उनकी अच्छी ख्याति हो गई थी। संवति के तारापती नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अधिक दिन जीवित न रहा। इससे पति-पत्नी को अत्यंत दुःख हुआ। विवाह से १४ वर्ष पीछे अर्थात् उस समय, जब रत्नावली ने अपने वय के २७ वें वर्ष में प्रवेश किया था, उसको रक्षाबंधन के लिये निज स्वामी की आज्ञा लेकर अपने भाई के यहाँ बदरी जाना पड़ा। इधर तुलसी भी जीविकार्थ बाहर गए थे। घर लौटने पर उन्हें अकेला रहना बहुत ही अखरा। और, इस आवेग में आगा-पीछा कुछ न विचारकर वह रात्रि में गंगाजी के चढ़ते प्रवाह को पारकर अपने श्वसुर के घर जा पहुँचे। अपने पति को ऐसे कुसमय में आया देख आश्चर्य-चकित होकर रत्नावली ने पूछा—"स्वामिन्, आप गंगाजी के चढ़ते प्रवाह को कैसे पार कर आए?" फिर यह जानकर कि मेरे प्रति प्रेमावेग ही के कारण इन्होंने ऐसा साहस किया है, उसने केवल यही कहा—"स्वामिन्, मुझे आपके दर्शन से परमाह्लाद हुआ। मेरा परम सौभाग्य है, जो आप मेरे साथ इतना प्रेम करते हैं। मेरे प्रति आपके इस प्रेम ने आपको गंगा पार करने के लिये उत्तेजित कर दिया। इससे निश्चय होता है कि भगवत्प्रेम भक्त को अवश्य इस संसार-सागर से पार कर देता है।"

घटना-चक्र को कौन रोक सकता है? तुलसीदास के चित्त ने अकस्मात् पलटा खाया। वह दांपत्य-प्रेम तत्क्षण भगवद्भक्ति में परिणत हो गया। अतः वह उसी समय बदरी से चले गए, सोरों

को भी त्याग गए। सं० १६०४ वि० में वह परिव्राजक बनकर घर से निकल गए। बहुत कुछ खोज हुई, परंतु उनका कहीं पता न चला। इसी वर्ष रत्नावली की माता का भी देहांत हो गया। तदनंतर पतिपरायणा, परित्यक्ता रत्नावली ने भोगों का परित्याग कर दिया। प्रत्येक वैषयिक सुख का त्यागकर संन्यासिनी का जीवन बिताती रही, और अंत में, सं० १६५१ वि० के अंत में, इस दुःख-पूर्ण संसार से चल बसी। वह नारी-जाति के लिये अपने पवित्र २०१ दोहों का निधि-अक्षय प्रदान कर गई। ये दोहे पश्चात्ताप-पूर्ण हैं। इनमें उत्तमोत्तम शिक्षाप्रद उपदेश और नीतियाँ भरी पड़ी हैं। इसके छ वर्ष उपरांत, अर्थात् सं० १६५७ वि० के आषाढ़ में, उसकी जन्मभूमि बदरी भी गंगाजी के सर्व-संहारी जलाप्लव में बहकर नष्ट हो गई।

लेख्य-प्रमाण अब समाप्त होता है। तुलसीदास ने, जैसा प्राचीन रूढ़ि-वाद से विदित होता है, बदरी से चलकर बहुत दूर-दूर देशों की यात्रा की। कभी-कभी उन्होंने लोकोत्तर चमत्कारी कार्य भी किए। वह चित्रकूट और अयोध्या में रहे; राजापुर की स्थापना †

---

* सागर४ प० रस६ ससी१ रतन सम्वत् भो दुपदाय
पिय-वियोग, जननी मरन करन न भूल्यो जाय (दोहा-रत्नावली)

† १—जन्म स्थान भी लोग कई ठिकाने लिखते हैं। बाँदा-ज़िले [illegible] यमुना-तीर राजापुर को बहुत लोग कहते हैं, परन्तु राजापुर आपका जन्म-स्थान नहीं। श्रीगोस्वामीजी का जन्म-स्थान श्रीगंगावाराह-क्षेत्र (सोरों) व प्रांत में था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया, इसी से वहाँ श्रीगोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्रीहनुमान्‌जी की मूर्ति है। यह वार्ता वहाँ जाकर मैंने भले प्रकार निश्चय की है।

की ; और अंत में बनारस जाकर स्थायी रूप से बस गए, जहाँ उन्होंने सं० १६८० में श्रावण के शुक्लपक्ष की सप्तमी को कुछ

राजापुर में श्रीगोस्वामीजी आज्ञा कर गए हैं कि देव मंदिर छोड़ अपने रहने को पक्का गृह कोई न बनवावे, ऊपर खपड़े ही छवावे और वेश्या नहीं नचावे... . इत्यादि ।

श्रीअयोध्याजी प्रमोदवन कुटिया निवासी सीतारामशरण भगवान-प्रसाद-विरचित श्रीभक्तमाल सटीक वार्तिक प्रकाश-युक्त पृष्ठ ७४१

(नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ), १६१३ ई०

२—पर जन्म कहाँ हुआ ? कुछ लोग बतलाते हैं, राजापुर उनकी जन्मभूमि है । पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं, उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ, पर गुसाईं ने वहाँ एक मंदिर बनवाया या गाँव बसाया । फिर हस्तिनापुर उनकी जन्म-भूमि बतलाई गई, और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है), पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं । फिर औरों ने कहा, वह तारी में जन्मे, पर दूसरे लोग कहते हैं, नहीं, उनके माता-पिता वहाँ रहते थे, पर यह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था । इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ ?

(रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज़ तुलसी ग्रंथावली निबंधावली पृष्ठ ४५)

३—'जन्म स्थान' के संबंध में भी अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ । राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है । यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहीं के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गुसाईंजी का जन्म-स्थान नहीं । विरक्त होने पर यह कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे, और प्रायः जाया करते थे ।

(शिवनंदनसहाय—माधुरी, पृष्ठ २४, अगस्त, १६२२)

रत्नावली के दोहे

(संक्षिप्त आलोचना)

रत्नावली के दोहों की संक्षिप्त आलोचना करना रत्नावली के साथ अन्याय करना है। फिर भी विस्तार-भय और समयाभाव से पूर्ण इस आशा से कि संक्षिप्त आलोचना पाठकों का ध्यान रत्नावली की रचना की ओर कुछ-न-कुछ आकर्षित करेगी ही, इस साध्वी विदुषी की रचना के महत्त्व का दिग्दर्शन कराने का विनम्र उद्योग किया जाता है।

(क)

भाषा की दृष्टि से रत्नावली के दोहे बहुत मनोहर हैं। ब्रज-भाषा स्पष्ट है; न तो संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार है, और न शब्दों की विकृत तोड़-मरोड़ ही। तत्सम और तद्भव दोनो प्रकार के शब्द प्रायः बराबर की संख्या में हैं। कुछ देशीय और प्रांतीय शब्द भी हैं, किंतु कम। रत्नावली ने 'पुनीत' और 'पूत', दोनो शब्दों का प्रयोग किया है; दूसरा तो शुद्ध संस्कृत-शब्द है, और पहला सैकड़ों वर्ष के प्रयोग से अब संस्कृत बन रहा है। रत्नावली ने केवल दो विदेशी शब्दों—सुफर और चकमक—का प्रयोग किया है; उसे विदेशी शब्दों के व्यवहार का कम अवसर प्राप्त होता होगा। उसका जन्म धर्म-प्राण हिंदू-कुल में हुआ था, और उसके पिता की आजीविका भी धार्मिक थी। तिस पर सोरों, तीर्थ होने के कारण, हिंदुओं की बस्ती थी और है। यद्यपि तुलसीदास का मकान मलकटियों (क़साइयों) के

रत्नावली के दोहे

(संक्षिप्त आलोचना)

रत्नावली के दोहों की संक्षिप्त आलोचना करना रत्नावली के साथ अन्याय करना है। फिर भी विस्तार-भय और समयाभाव से पूर्व इस आशा से कि संक्षिप्त आलोचना पाठकों का ध्यान रत्नावली की रचना की ओर कुछ-न-कुछ आकर्षित करेगी ही, इस साध्वी विदुषी की रचना के महत्त्व का दिग्दर्शन कराने का विनम्र उद्योग किया जाता है।

(क)

भाषा की दृष्टि से रत्नावली के दोहे बहुत मनोहर हैं। ब्रज-भाषा स्पष्ट है; न तो संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार है, और न शब्दों की विकृत तोड़-मरोड़ ही। तत्सम और तद्भव दोनो प्रकार के शब्द प्रायः बराबर की संख्या में हैं। कुछ देशीय और प्रांतीय शब्द भी हैं, किंतु कम। रत्नावली ने 'पुनीत' और 'पूत', दोनो शब्दों का प्रयोग किया है; दूसरा तो शुद्ध संस्कृत-शब्द है, और पहला सैकड़ों वर्ष के प्रयोग से अब संस्कृत बन रहा है। रत्नावली ने केवल दो विदेशी शब्दों—तुपक और चकमक—का प्रयोग किया है; उसे विदेशी शब्दों के व्यवहार का कम अवसर प्राप्त होता होगा। उसका जन्म धर्म-प्राण हिंदू-कुल में हुआ था, और उसके पिता की आजीविका भी धार्मिक थी। तिस पर सोरों, तीर्थ होने के कारण, हिंदुओं की बस्ती थी और है। यद्यपि तुलसीदास का मकान गलकटियों (क़साइयों) के

पास था, तथापि कदाचित् रत्नावली को अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियों के संसर्ग में आना रुचिकर न हुआ होगा। यह भी निश्चय नहीं कहा जा सकता कि उन दिनों वहाँ के अपठित कमाई और उनकी स्त्रियाँ हिंदुस्थान में फ़ारसी और अरबी-शब्दों का प्रयोग करते होंगे।

रत्नावली ने रीति-काल के कवियों की भाँति अपने कविता-कौशल को प्रदर्शित करने का प्रयत्न नहीं किया। किंतु उसके वाक्य व्याकरण-सम्मत हैं। हाँ, कभी-कभी अनावश्यक क्रियाओं को छोड़ दिया है, जिससे भाव-स्पष्टता में कोई अंतर नहीं पड़ता, प्रत्युत पिष्ट-पेषण और द्विरुक्ति-दोष का निवारण हो गया है। इसने गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया, और कविता का आदर्श, जिसका उसने यथाशक्ति स्वयं पालन किया, इस प्रकार है—

रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास ;
तिमि उचरहु लघु पद करहि अरथ गंभीर विकास।

रचना के लिये इसने दोहा पसंद किया, जो बहुत छोटा छंद है। इसी में इसने अपने गूढ़, गंभीर और पुष्कल विचार भर दिए। दोहा लिखने में यह बिहारी और तुलसी के समकक्ष है, और रहीम तथा वृंद से बढ़कर। इसके दोहों में च्युति-दोष का अभाव-सा है; यदि कहीं है भी, तो वह पूर्णबिंदु और चंद्रबिंदु के अव्यवस्थित प्रयोग से, जो उन दिनों अधिक ध्यान का विषय न था। यतिभंग का भी अभाव है। अतएव कहा जा सकता है कि रत्नावली का दोहे पर अधिकार था।

युक्ति और कारण-निर्देश के समय रत्नावली निजी अनुभव और आप्त वाक्य का आधार लेती है, प्रधानतः पहले प्रकार का। उसकी तर्क-शैली ओजस्विनी और विश्वासोत्पादनी है ; उसकी रचना-

शैली संक्षिप्त, किंतु विशद, लोक प्रिय, किंतु उन्नत है। रत्नावली के दोहों में संभोग और विप्रलंभ शृंगार एवं कहीं-कहीं शांत-रस भी विद्यमान है। इसके दोहों में अलंकारों की कमी नहीं। अनेक स्थलों पर अनुप्रास, यमक और श्लेष मिलते हैं। विषादन, विनोक्ति, स्मरण, विरोध, दृष्टांत, अर्थांतरन्यास, उदाहरण, पदार्थ-वृत्ति-दीपक, रूपकातिशयोक्ति, पर्यायोक्ति, उपमा और रूपक का प्रचुर प्रयोग हुआ है। विस्तार-भय से इन अलंकारों के उदाहरण अभीष्ट नहीं। हाँ, उसकी उत्कृष्ट कल्पना के कतिपय उदाहरणों से रत्नावली के कवित्व का आभास अवश्य मिल जायगा।

दीनबंधु कर घर पली, दीनबंधु कर छाँह;
तौउ भई हौं दीन अति पति त्यागी मो बाँह।

पदार्थ-वृत्ति-दीपक, विरोधाभास और यमक का अच्छा उदाहरण है।

सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय स्याम;
रतनावलि आभा गई, तुम बिन बन-सम गाम।

इसमें 'सुकुल' और 'स्याम' के कारण विरोधाभास प्रतीत होता है। सुकुल शब्द के दो अर्थ हैं—अच्छा कुल और श्वेत।

जासु दलहि लहि हरषि हरि हरत भगत-भव राग;
तासु दास-पद-दासि ह्वै रतन लहत कत सोग।

पर्यायोक्ति का अच्छा उदाहरण है। रत्नावली अपने पति (तुलसीदास) का नाम लेने में संकोच करती है, क्योंकि शास्त्रों के अनुसार पत्नी को पति का नाम लेना उचित नहीं, फिर भी वह अपने पति का नाम व्यक्त कर रही है।

राम जासु हिरदे बसत, सो पिय मम उर धाम;
एक बसत दोऊ बसे, रतन भाग अभिराम।

राम तुलसीदास के और तुलसीदास रत्नावली के हृदय में रहते हैं, अत इस पुण्यशीला को पतिदेव एवं भगवान् दोनों का ही सान्निध्य प्राप्त है। कैसी सुंदर कल्पना है।

पति सेवति रतनावली सकुची धरि मन लाज;
सकुच गई कछु, पिय गए सज्यो न सेवा-साज।

संकोच की परा काष्ठा है, दोहे के शब्दों में भी संकोच प्रतिबिंबित है।

कर गहि लाए नाथ, तुम बादन बहु बजवाय;
पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाय।

विवाह के समय तो तुलसीदास ने रत्नावली का हाथ पकड़ने के लिये स्वयं अपना हाथ बढ़ाया, किंतु घर छोड़ते समय पैर छुआने में भी संकोच किया।

मलिया सींची विविध विधि रतन लता करि प्यार;
नहिं बसंत-आगम भयो, तब लगि पर्यो तुसार।

अप्रत्यक्ष रूप से वह अपने पिता की तुलना उद्यान के माली से, अपनी बेल से, पति-वियोग की पाले से और भविष्य-सुख की वसंत से करती है।

तिय-जीवन तेमन-सरिस, तौलों कछुक रुचै न;
पिय-सनेह-रस रामरस जौलों रतन मिलै न।

बड़ी सुंदर उपमा है। जीवन में पति-प्रेम का वही स्थान है, जो शाक में नमक का।

रतन प्रेम डंडी तुला, पला जुरे इकसार;
एक बाट- पीड़ा सहै, एक गेह- सभार।

प्रेम की तुलना तराजू की डंडी से और पति-पत्नी की पलड़ों से दी है। जिस प्रकार पलड़े डंडी से जुड़े होते हैं, उसी प्रकार पति पत्नी का संयोग प्रेम द्वारा होता है। एक पलड़े में बाट

रक्खा जाता है, दूसरे में घर की कोई वस्तु। तुलसीदास यदि मार्ग का कष्ट सहन कर रहे हैं, तो रत्नावली घर के झंझटों में व्यस्त है। बाट और गेह-संभार के श्लेष सुंदर हैं।

नर-अधार बिनु नारि तिमि, जिमि स्वर बिनु हल होत;
करनधार बिनु उदधि जिमि, रतनावलि गति पोत।
भल इकलो रहिबो रतन, भलो न खल-सहवास;
जिमि तरु दीमक सँग लहै, आपन रूप बिनास।
सवरन स्वर लघु द्वै मिलत, दीरघ रूप लसात;
रतनावलि असवरन द्वै मिलि निज रूप नसात।

पति-पत्नी-समीकरण, कुसंग, दोष एवं सम-संग की महिमा के ये अच्छे उदाहरण हैं।

उदय भाग रवि मीत बहु, छाया बड़ी लखात;
अस्त भए निज मीत कहँ, तनु छाया तजि जात।

चनावटी मित्र का कैसा सुंदर लक्षण है। जब सूर्य उदित होकर ऊपर चढ़ने लगता है, तो शरीर की छाया बड़ी हो जाती है; किंतु सूर्य अस्त होने पर यह छाया विलीन हो जाती है। इसी प्रकार भाग्य के चेतने पर मित्र-मंडल बड़ा हो जाता है, और बुरे दिन आने पर मित्रों का तो कहना क्या, अपना शरीर भी छोड़कर चला जाता है। सूर्य की उपमा भाग्य से दी है, छाया की मित्र-मंडल से। कितनी उत्कृष्ट सूक्ति है।

(ख)

अभी तक रत्नावली के २०१ दोहों का पता चला है। इनमें से ८८ दोहों में उसने अपना नाम 'रत्नावली' अथवा 'रत्नावलि' और ८२ दोहों में 'रतन' प्रकट किया है। केवल ३१ दोहे ऐसे हैं, जिसमें उसने अपना नाम नहीं दिया। कभी-कभी उसने

अपने विषय में भी उल्लेख किया है। देखिए, किस कौशल से वह अपने पति का नाम प्रकट करती है—

जासु दलहि लहि हरषि हरि हरत भगत-भय-रोग ;
तासु दास-पद-दासि ह्वै रतन लहत कत सोग।

रत्नावली अपने पति की राम-भक्ति की ओर इंगित करती है—

राम जासु हिरदै बसत, सो पिय मम उर-धाम ;
एक बसत दोऊ बसैं, रतन भाग अभिराम।

वह अपने पिता दीनबंधु और अपने पति के सुकुल वंश का इस प्रकार स्मरण करती है—

दीनबंधु कर घर पली, दीन बंधु कर छाँह;
तौउ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बाँह।
सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय स्याम ;
रतनावलि आभा गई, तुम बिन बन-सम गाम।

रत्नावली बदरिया में पैदा हुई थी, और उसके पतिदेव सूकरक्षेत्र में। वह लिखती है—

जनमि बदरिका कुल भई हौं पिय कंटक-रूप ;
बिंधत दुखित ह्वै चल गए रत्नावलि-उर-भूप।
हाइ बदरिका बन भई, हौं बामा विष-बेलि ;
रत्नावलि हौं नाम की, रसहिं दयो विस मेलि।
प्रभु बराह पद पूत महि, जनममही पुनि एहि ;
सुरसरि तट महिं त्याग अस, गए धाम पिय केहि।
तीरथ आदि बराह जे, तीरथ सुरसरि-धार ;
याही तीरथ आइ पिय भजउ जगत-करतार।

रत्नावली का विवाह गाजे-बाजे से १२ वर्ष की, गौना १६ वर्ष की और पति-वियोग २७ वर्ष की उम्र में हुआ था—

कर गहि लाए नाथ, तुम बादन बहु बजवाइ;
पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाय।
सोवत सों पिय जगि गए, जगिहु गई हों मोइ;
कबहुँ कि अब रतनावलिहि आइ जगावहिं मोइ।
षस बारहीं कर गह्यो, सोरहिं गवन कराइ;
सत्ताइस लागत करी नाथ रतन असहाइ।

सं० १६०४ वि० रत्नावली के लिये बड़ा अशुभ सिद्ध हुआ; उस वर्ष उसका पति से वियोग और उसकी माता का देहावसान हुआ—

सागर४ प० रस६ ससि१ रतन,संवत भो दुखदाइ;
पिय-वियोग, जननी-मरन, करन न भूल्यो जाइ।

क्या रत्नावली पति-वियोग के लिये दोषी थी? नहीं, वह निर्दोष थी, वह स्पष्ट कहती है—

हों न नाथ, अपराधिनी, तऊ छमा कर देव;
चरनन-दासी जानि निज बेग मोहि सुधि लेव।

पति-वियोग का क्या कारण था? यही न कि उसने दंपति-प्रेम के समय असावधानी से भगवत्-प्रेम की अप्रासंगिक चर्चा छेड़ दी थी, जिससे तुलसीदास के प्रसुप्त संस्कार अकस्मात् जाग्रत् हो उठे। वह कहती है—

सुमहु बचन अप्रकृत गरल रतन प्रकृत के साथ;
जो मो कहूँ पति-प्रेम सँग ईस-प्रेम की गाथ।
हाइ सहज ही हों कही लह्यो बोध हिरदेस;
हों रत्नावलि जँचि गई पिय-हिय काच विसेस।

वास्तव में अपराधिनी न होते हुए भी पति-परायणा रत्नावली अपने को अपराधिनी ही समझती है—

छमा करहु अपराध सब अपराधिनि के आय;
बुरी-भली हों आपकी तजउ न, लेउ निभाय।

रत्नावली क्या प्रतिज्ञा करती है। वह कहती है कि यदि उसके पति लौट आएँगे, तो वह उन्हें कभी इस बात का उराहना न देगी कि वे उसे छोड़कर क्यों चले गए थे।

नाथ, रहौंगी मौन हों, धारहु पिय जिय तोस ;
कबहुँ न दऊँ उराहनो, दऊँ न कबकुँ दोस।

उसका पति-वियोग अति तीव्र है। उसके शब्दों में पश्चात्ताप की परा काष्ठा है। वह अपनी दीन-हीन दशा का कितना भाव-पूर्ण चित्रण करती है—

असन बसन, भूषन, भवन, पिय बिन कछु न सुहाइ ;
भार-रूप जीवन भयो, छिन-छिन जिय अकुलाइ।

पति-वियोग में पति की खड़ाऊँ ही उसके आधाधार हैं—

पति-पद सेवा सों रहत रतन पादुका सेइ ;
गिरत नाव सों रज्जु तेहि सरित पार करि देइ।

रत्नावली इस बात का उल्लेख करती है कि नंददास गोस्वामीजी के छोटे भाई थे, और उन्होंने अपने भाई का संदेश लाकर अपनी भाभी को दिया —

मोहिं दीनो संदेश पिय अनुज नंद के हाथ ;
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरति रघुनाथ।

इधर रत्नावली पति-वियोग में घर के कंकटों का अनुभव कर रही थी, और यह भी कल्पना करके दुःख पा रही थी कि उधर उसके पतिदेव मार्ग के दुःखों का अनुभव कर रहे होंगे। उसकी कल्पना कितनी उत्कृष्ट है, और कविता कितनी श्लाघ्य—

रतन प्रेम डंडी तुला, पला जुरे इकसार ;
एक घाट - पीडा सहै, एक गेह - संभार।

दर्शनाभिलाषा इतनी तीव्र है कि निराशामय हो गई है—

कहाँ हमारे भाग अस, जो पिय दर्शन देइँ;
याहि पाछिली दीठि मों एक बार लपि लेइँ।

पति-भक्ति के लिये रत्नावली की प्रार्थना अपने पति के इष्टदेव के अनुराग में रंजित होकर कितनी प्रशस्त हो गई है—

जनम-जनम पिय-पद पदम रहै राम-अनुराग;
पिय बिछुरन होइ न कबहुँ, पावहुँ अचल सुहाग।

फिर भी मलाल बना ही रहता है—

पति सेवति रतनावली सकुची धरि मन लाज;
सकुच गई कछु, पिय गए सज्यो न सेवा-साज।

अनेक दोहों में रत्नावली ने स्त्रियों को नीति-पूर्ण उपदेश दिया है, जिनमें पति-महिमा, पति के प्रति सद्भाव तथा सद्व्यवहार का उल्लेख है—

नेह सील गुन वित रहित, कामी हूँ पति होय;
रतनावलि भलि नारि हित पुज्यदेव-सम सोय।
पति गति, पति वित्त, मीत पति, पतिगुरु, सुर भरतार;
रतनावलि सरबस पतिहि, बधु बंध जग मार।

रत्नावली कहती है कि स्त्री को अपने युवा पिता, दामाद, ससुर, देवर और भाई से भी एकांत में बात नहीं करनी चाहिए—

जुवक जनक, जामात, सुत ससुर, दिवर और भ्रात;
इनहूँ सों एकांत बहु कामिनि, सुन जनि बात।
घी को घट है कामिनी, पुरुष तपत अगार;
रतनावलि घी-अगिनि को उचित न संग विचार।

रत्नावली के मत में सुनारी (सुतिमय) वही है, जो घर का सब काम-काज मन लगाकर स्वच्छता-पूर्वक, प्रमाद-रहित होकर करती है—

तन, मन, अन, भाजन, बसन, भोजन, भवन पुनीत—
जो राखति रतनावली, तेहि गावत सुर गीत।

धन चारति, मितव्यय धारति घर की वस्तु सुधारि ;
सूपकार आचार कुल पति रत रतन सुनारि ।
पति बरतउ जिहि वस्तु नित, तेहि धरि रतन सँभारि ,
समय समय नित दै पियहिं आलस मदहिं बिसारि ।
रतनावलि सबसों प्रथम जगि उठकर गृह काज ,
सचतु सुवाइहिं सोय तिय, धरि सँभारि गृह साज ।

रत्नावली का उपदेश है कि घर की बातें, धन, दवाई आदि की चर्चा यों ही अड़ोसी पड़ोसियों से नहीं करते रहना चाहिए—

सदन भेद, तन धन रतन, सुरति, सुभेषज, अन्न ;
दान, धरम, उपकार तिमि राखि वधू परछन्न ।

सुतैमन को चाहिए कि वह अनजान व्यक्तियों और फेरीवालों से सतर्क रहे, नौकर चाकरों से कम बोले, साथ ही उन्हें उपयुक्त वस्त्रादि देकर प्रसन्न भी रक्खे—

अनजाने जन को रतन कबहुँ न करि विसवास ,
वस्तु न ताको लाइ कछु, देइ न गेह-निवास ।
बनिक फेरवा, भिक्षुकन जनि कबहूँ पतिआय ;
रतनावलि जेइ रूप धरि ठग जन ठगहिं भ्रमाय ।
करमचारि जन सों भली जथाकाज बतरानि ,
बहु बतान रतनावली, गुनि अकाज की खानि ।
धरि सुभाय रतनावली, निज पिय पाट पुरान ;
जथा समय तिन दै करहु करमचारि-सनमान ।

बहुत बोलना, हँसना, घर घर घूमना, चोरी, लोभ, झूठ, व्यभिचार, जुआ आदि दोष हैं। मिष्ट भाषण के विषय में बड़ी सुन्दर कल्पना है—

रतनावलि मुख वचन हूँ इक सुख दुख को मूल ;
सुख सरसावत वचन मधु, कटु उपजावत सूल ।

मधुर असन जनि देव कोउ, बोलौ मधुरे बैन ;
मधु भोजन छिन देत सुख, बैन जनम भरि चैन।
रतनावलि काँटो लग्यो, वैदनु दयो निकारि ;
बचन लग्यो निकस्यो न कहुँ, उन डारो हिय फारि।

इनके अतिरिक्त और भी नीति-पूर्ण विषय हैं, जो वास्तव में बड़े मधुर हैं।

रत्नावली स्त्री का आदर्श इस प्रकार उपस्थित करती है—

देति मंत्र सुठि मीत-सम, नेहिनि मातु-समान ;
सेवत पति दासी-सरिस रतन सुतिय धनि जान।
तू गृह-श्री ह्री, धी रतन, तू तिय सकति महान ;
तू अबला सबला बने, भरि उर सती विधान।

रत्नावली शिक्षा, विशेषतः स्त्री-शिक्षा, के विषय में अपने विचार रखती है। स्त्री का गुरु पति है। हाँ, वह माता-पिता और बड़े भाई से भी पढ़ सकती है, सो भी हित की, व्यर्थ की बातें नहीं—

चतुर बरन को बिप्र गुरु, अतिथि सबन गुरु जान ;
रतनावलि तिमि नारि को पति गुरु कह्यो प्रमान।
जननि, जनक, भ्राता बड़ो, होइ जो निज भरतार ;
पढ़इ नारि इन चारि सों, रतन नारि हितसार।

बालकों को बचपन से ही दया, धर्मादि की शिक्षा देनी चाहिए, क्योंकि बचपन में जो आदत पड़ जाती है, वह दृढ़ हो जाती है—

बाल बैस ही सों धरो दया, धरम, कुल-कानि ;
बड़े भए रतनावली, कठिन परैगी बानि।
बारेपन सों मातु-पितु जैसी डारत बानि ;
सो न छुटाए पुनि छुटत रतन भएहुँ सयानि।

सच्चे लालन-पालन का उद्देश्य यही है कि बालक छलोपालन छोड़कर गुरुता ग्रहण करे—

पानहि लालहु अस रतन जो न औगुनी होय ;
दिन दिन गुन गुरुता गहै, साँचो लालन सोय।

शिक्षा की कसौटी क्या है ? अच्छी शिक्षा वही है, जो मनुष्य-मात्र को प्रसन्न और सुखी करे। शिक्षित बालक वही है, जिसे देख-देखकर मनुष्य प्रसन्न हों, और आशीर्वाद दें—

बालहि सीप विपाय अस, लखि-लखि लोग सिहायँ ;
आसिष दें हरषें रतन, नेह करें, पुलकायँ।

सह-शिक्षा की तो बात ही क्या, रत्नावली बालक और बालिकाओं के साथ-साथ खेलने को अच्छा नहीं समझती—

लरिकन सँग खेलनि-हँसनि, बैठनि रतन इकंत ;
मलिन करत कन्या-चरित, हरत सील कहँ संत।

रत्नावली के दार्शनिक विचार पुष्ट, परिमार्जित और प्रशस्त हैं। यह स्पष्ट है कि वह भाग्यवादिनी है, भाग्य में उसका विश्वास है—

रतन दैव-बस अमृत विष, विष अमिरत बनि जात ;
सूधी हू उलटी परै, उलटी सूधी बात।
रतनावलि औरें कछू चहिय होइ कछु और ;
पाँच पैंड़ आगे चले, होनहार सब ठौर।

किंतु वह निष्क्रियता का प्रचार नहीं करती। वह आलस्य के त्याग का उपदेश करती है। उसका भाग्यवाद कोई साधारण भाग्यवाद नहीं। तात्त्विक विचार से भाग्यवाद भले ही ठीक हो, किंतु व्यवहार की दृष्टि से पुरुषार्थ आवश्यक है। दुःखों से भी नहीं डरना चाहिए—

ज्यों ज्यों दुख भोगति तनहिं, दूरि
रतनावलि निरमल बनत, तिमि सु
भगवान् बुद्ध की भाँति वह

विषयों की शांति नहीं होती। यह कहती है कि यौवन, शक्ति, प्रभुता, सम्पत्ति और अविवेक, इनमें से प्रत्येक ही अवगुण को उत्पन्न करता है। यदि ये चारों एकत्र हो जायँ, तो बड़े अनिष्ट-कारक होते हैं—

तरुणाई, धन, देह-बल, बहु दोषन-आगार;
बिनु बिवेक रतनावली, पशु-सम करत विचार।
रतनावलि उपभोग सों, होत विषय नहिं शांत;
ज्यों-ज्यों हवि होमें अनल, त्यों-त्यों बढ़त नितांत।

अतएव इंद्रियों का दमन करना चाहिए। इंद्रियाँ घोड़े के समान हैं। यदि इनको दमन न किया जाय, तो उद्दत घोड़ों की भाँति ये शरीर-रूपी रथ को विनाश के गर्त में पटक दें—

पाँच तुरग तन-रथ जुरे, चपल कुपथ लै जात;
रतनावलि मन-सारथिहि रोकि रुके उत्पात।

रत्नावली ठीक कहती है कि पंचज्ञानेंद्रियों में से प्रत्येक इंद्रिय उद्दत होकर अनिष्ट कर सकती है, और इनको क़ाबू में रखने से हित होता है—

मैन नैन, रसना रसन, करन नासिका साँच;
एकहि मारत अनम है, स्वबस निभावत पाँच।

रत्नावली दूसरों के दोष-दर्शन को बुरा बताती है, और चाहती है कि अपने दोषों पर विचार कर आत्मा की उन्नति की जाय। स्वसंस्कार के निमित्त अच्छे अभ्यासों की आवश्यकता है। बचपन से ही दया-धर्म और कुल-मर्यादा आदि की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अच्छा बनने में तो समय लगता है, बुरा बनते क्या देर लगती है? सुमेरु पर चढ़ना कठिन है, गिरना सरल। रत्नावली सरल जीवन और उच्च विचार की शिक्षा देती है। सरल जीवन के लिये सत्य, दया और लज्जा की आवश्यकता है;

संगत है। यदि तेरा पति भगवान् का भजन करता है, और तू पति का भजन करती है, तो रूपांतर से तू भी भगवान् का भजन करती है। पति-पत्नी के एकीकरण (असिमिलेशन) को रत्नावली स्पष्ट करती है—

पति के सुख सुख मानती, पति-दुख देखि दुखाति ;
रत्नावलि धनि द्वैत तजि तिय पिय-रूप लखाति ।

यही पति-पत्नी का सायुज्य है। रत्नावली तो ब्रह्मानंद को भी प्रिय-प्रेम-रस से घटकर समझती है। परमार्थ की दृष्टि से कदाचित् रत्नावली का विश्वास और विचार न टिक सकें, किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यवहार की दृष्टि से गृहस्थ जीवन में रत्नावली की धारणा सत्य है, शिव है, और सुंदर है—

सब रस रस इक ब्रह्म रस, रतन कहत बुध लोय ;
पै तिय कहँ पिय-प्रेम-रस, बिंदु सरिस नहिं सोय ।

तो क्या रत्नावली संकुचित प्रेम—दांपत्य प्रेम—का आदर्श उपस्थित करती है। नहीं, वह परोपकार, दया और करुणा की भूरि-भूरि प्रशंसा करती है। जो प्राणी दूसरे के लिये जीता है, वह प्रशस्त है, क्योंकि कुत्ते, गाय, बंदर भी अपने लिये जीते हैं। दूसरे के लिये, परोपकार के लिये, क्षण-मात्र भी जीवित रहना अच्छा है; जो ऐसा करता है, वही वास्तव में जीवित है, अन्यथा मृतप्राय है—

पर-हित जीवन जासु जग, रतन सफल
निज हित कूकर, काक, कपि जीवहिं का
रतनावलि छिनहूँ जिये धरि पर-हित
सोई जन जीवत गनहुँ, अनि जीवत

किंतु पर-हित प्रत्युपकार की आशा से
चाहिए—

रतन करहु उपकार पर, चहहु न प्रति उपकार ;
लहहिं न बदलो साधु जन, बदलो लघु ब्यौहार।

दूसरों के उपकार को स्मरण रक्खो, अपने किए हुए उपकार को भूल जाओ—

पर-हित करि बरनत न बुध, गुपत रपहिं दै दान ;
पर-उपकृत सुमिरत रतन, करत न निज गुन-गान।

परोपकार का अर्थ यह नहीं कि अपने जान-पहचानवालों के ही साथ उपकार करो, अथवा अपनों को ही रेवड़ियाँ बाँटो। परोपकार में पक्षपात नहीं, अपने पराए का भेद-भाव नहीं। परोपकार तो जाति-प्रेम और देश-प्रेम से भी बढ़कर है। वास्तविक परोपकार में तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पुनीत भावना है। रत्नावली कहती है—

जे निज, जे पर, भेद इमि लघु जन करत विचार ;
चरित उदारन को रतन, सकल जगत परिवार।

पिय-प्रेम और पर-हित दोनो में त्याग की परा काष्ठा है। दोनो में प्रेम है, एक दांपत्य प्रेम है, तो दूसरा विश्व-प्रेम।

रत्नावली के सभी दोहे वास्तव में सरल और शुद्ध हृदय के भावमय उद्गार हैं, और तुलसी-दोहों के सदृश ही सरस भी। संख्या में अधिक न होने पर भी ये रत्नावली की कीर्ति अमर रखने के लिये पर्याप्त हैं।

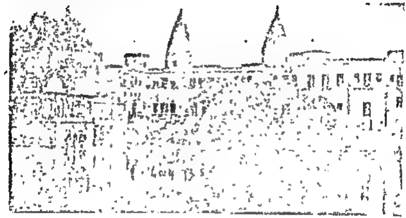

श्रीवराहजी का मंदिर और घाट, सूकरक्षेत्र
(सोरों, ज़िला एटा)

[देखें पृष्ठ ८२]

रत्नावली-चरित

(चतुर्वेद श्रीमुरलीधर-कृत)

श्रीगणपतये नमः । सरस्वत्यै नमः ।

हरिहरगुरुभक्तः कर्मधर्मानुरक्त-
त्रिभुवनगतकीर्तिः कान्तिकन्दर्पमूर्तिः ;
रघुवरगुणगाथागानशीलो महात्मा,
सजयति सुकुलात्मा रामसूनुः कवीन्द्रः ॥ १ ॥

रत्नावलीवदनचन्द्रचकोररूपः
श्रीरामचन्द्रपदपङ्कजचञ्चरीकः ;
श्रीशुक्लवंशतिलकस्तुलसीद्विजेन्द्रो
वन्द्यो बुधो जयति शीकरतीर्थतीर्थः ॥ २ ॥

अथ रत्नावली चरित लिप्यते ॥

वंदों[1] विकट वराह[2] ईश ; वंदों सनकादिक मुनीस ।
बंदी सारदहि सीस नाइ[3] ; सावित्री सिय गुनन गाइ[4] ।
अरुन्धती दमयन्ति नारि ; अनुसूया[5] पुनि गान्धारि ।
सती भई ले जगत धाम ; तिनहिं सबनु कहं करि प्रनाम ।
रतनावलि की[6] लिपहुँ गाथ ; तिहि चरनन महं नाइ माथ ।
जासु चरित है अति गंभीर ; तदपि लिपहुं[7] कछु धारि धीर ।

विदित वेद अघ हरनहारि ; पतितनु पावन करनहारि ।
सुरसरिता के दच्छिन कूल ; धन्य धरनि मांगल्यमूल ।
निज सुभाव वस जगतनाह , हरि प्रगट्यो जहं वपु वराह ।

तासों जे बाराह[8] खेतु ; भई भूमि भव तरन सेतु[9] ।

तीरथ सूकर खेत[10] नाम ; भयो विदित जन मुकतिधाम ।
बहु तीरथ जहँ रहे राजि ; सेवत अघगन जात भाजि ।
पाई मुनिजन जहाँ शान्ति ; मेटी निज भव भीति भ्रान्ति ।
आदि तीर्थ जे जगत माहिं ; सब तीर्थनु फल है जहाहिं ।

सुरसरि पुनि बाराह खेत[11] ; मधुर[12] रूप पुनि फलहु देत ।
जहं वराह प्रभु सदन एक ; सोहत सुर सदनहु अनेक ।

जवननु ढारे[13] बहुत तोरि ; पुनि कछु[14] भगतनु लये जोरि ।

पुनि

जहं सुरसरि की बहति धार ; जनु वराह पद रहि पखार[15] ।

[16]जि वपु विप्र जहं करत वास ; रहे वेद धरमहिं प्रकास ।
बांचत नित चित सों पुरान ; प्रभु की कीरति करत गान ।
जहं जोगी जन मठ समाधि ; बनी दरस सों हरति व्याधि ।

सोरंकी नृप सोमदत्त ; भयो जहां श्रुति[17] धरमरत्त ।

तासु दुर्ग[18] अब सेस नाहिं ; कछुक चिह्न ताके लखाहिं[19] ।

सोरंकी नृप के सुनाम ; भयो खेत्र सोरंक[20] गाम ।
ताके पच्छिम दिशि कछार ; बहति पुरातन गंगधार ।

तासु प्रतीची तीर धाम ; कबहुं रह्यो नयनाभिराम ।
नाम बदरिका वन प्रसिद्ध ; होत मृगादि न जहां विद्ध ।
विविध गुल्म तरु लता जाल ; वर पाकर पीपर रसाल ।
कदम निंब जंबू खजूरि[२१] ; सिंसप बदरिन रह्यो पूरि[२२] ।
कूजत[२३] तहं बहुविध विहंग ; सुखि[२४] स्वतंत्र[२५] विहरत कुरंग ।
रह्यो[२६] शान्ति को थल विसाल ; बदरी वन[२७] भुईं अन्तराल ।
जहां राजर्षी मुनि कुटीर ; बही ज्ञान की जहं समीर ।
जहां बसे ऋषि[२८] मुनि विरक्त ; सिद्ध साधु जोगी सुभक्त ।
ताइ काल बस मुनिनधाम ; बन्यो गृहस्थनु वास गाम ।
जाहि बदरिका गाम[२९] आइ ; विविध जाति जन बसे आइ[३०] ।
बसतु तहां वर[३१] विप्र एकु ; धारतु निगमागम विवेकु[३२] ।
दीनबंधु पाठक सुनाम[३३] ; ईशभक्त बहु गुनग्राम ।
उपाध्याय की धरत वृत्ति ; निरत करम षट सुकृत[३४] कृत्ति ।
तासु दयावति नाम वाम ; पतिवरता गुनशीलधाम[३५] ।
दोउन प्रगटे पुत्र तीन ; शिव[३६] शंकर[३७] शंभू प्रवीन ।
तनया रत्नावलि[३८] कनीन ; पति पितु कुल जिन पूत कीन ।
जासु रूप अति मनोहारि ; जनु विरंचि विरची सम्हारि ।

जनक जननि की अति दुलारि; परिजन पुरजन सबै प्यारि।
बोलत सब सों मधुर बैन; जेहि[३९] लपि[४०] पावत दुपित[४१] चैन।
जासु हंसनि चितवनि अनूप; शान्ति[४२] शील[४३] सुप[४४] नेह रूप।
निरमोही लपि मोहि जात; फिरि नेहिन की कौन बात।
गूढ़ ज्ञान की कहति बात; बड़ी बात लघु सुप[४५] लपात[४६]।
बालक पन सों गेह काज; सीपि[४७] गई सब पाक साज।
निज भावतु सो पढत देपि; आपुहु आंपर[४८] पढत लेपि।
[४९]अपर बुद्धि तेहि जनक जानि; पाटी बुदिका दयो लानि।
कछुक दिनन महं भई जोग; कहहिं सरसुथी ताहि लोग।
पुनि व्याकरनहुं पितु पढाइ[५०]; दीनो कोशहु[५१] तेहि[५२] घुकाइ[५३]।
बालमीकि मुनि पढन लागि; गई भारती तासु जागि।
[५४]दिंगल के कछु अंग जानि; काव्य करन की परी बानि।
[५५]शिव गौरी को धरति ध्यान; पूजति बहु विधि सहित मान।
पितु तनया[५६] लपि व्याह जोग; सोचहिं किन घर जासु भोग।
ढूंढि फिरे सो बहुरि गाम; भई न पूरी मनोकाम।
भये दुपित[५७] अति चित्त माहिं; सुभ जोग बर मिलत नाहिं।
[५८]तबहि मीत इक दई आस; गुरु नृसिंह के जाउ पास।

स्मारत[५९] वैष्णव सो पुनीत ; अखिल[६०]/सकल वेद आगम अधीत ।

चक्रतीर्थ ढिग पाठशाल[६१] ; तहीं पढावत त्रिपुल बाल ।
तहां रामपुर के सनाढ्य ; सुकुल वंशधर द्वै गुनाढ्य ।
तुलसीदास अरु नंददास ; पढत करत विद्या विलास ।
एक पितामह पौत्र दोउ ; चंदहास लघु अपर सोउ ।

तुलसी आत्मारा[६२]म पूत ; उदर हुलासी के प्रसूत ।
गए दोउ ते अमरलोक ; दादी पोसहि करि सशोक[६३] ।
बसत जोगमारग समीप ; विप्र बंश कर दिव्य दीप ।
कहत रह्यो सो राम राम ; रामोलाहू तासु नाम ।
गौर बरन विद्या निधान ; विविध शास्त्र[६४] पंडित महान ।
काव्य कला महं[६५] सो प्रवीन ; सकल दुरगुनन सौं विहीन ।
सब विधि रतनावली जोग ; अति सुशी[६६]ल तनु रहित रोग ।
सुनि पती प्रिय भीत बात ; गे नृसिंह गुरु ढिग सिहात ।
पाठक तिन कहं करि प्रनाम ; देख्यो[६७] तुलसी सुघ[६८] ललाम ।
गुरुमुख[६९] परिचय तासु पाय ; गोत गाम कुलविधि मिलाय ।
करि दीनो पुनि वागदान ; मुदित भए मनमहं महान ।
पीत पत्रिका लगन रीति ; करी सबहि जस बंश नीति ।
शुभ दिन पुनि आई बरात ; दोऊ पच्छ न फूले समात ।

कीन जथाविधि विधि विवाह ; दीनवन्धु भरि उर उछाह।
तुलसी कर में सह विधान ; रत्नावलि को दयो दान
रत्नावलि गइ तुलसि गेह ; तासु वढ्यो पति पदनु नेह।
७०
रत्नावलि सी नारि पाइ ; तुलसी घर सुख गयो छाइ।
पितामही बहु दुख उठाइ ; पोसे तुलसी घर लगाइ।
दंपति सेवा सों सिहाइ ; सुरग गईं कछु दिन बिताइ।
नन्ददास अरु चंदहास ; रहहिं रामपुर मातु पास।
दंपति बसि वाराह धाम ; लहत मोद आठोहु याम।
७१
कबहु करत विद्या विनोद ; लहत शब्द चातुरि प्रमोद।
संध्या वंदन आदि कर्म ; करत सकल नित गृही धर्म।
७२
रखत राम मूरति स्वगेह ; उभय संधि पूजत सनेह।
७३
घात घात श्रीराम राम ; तुलसी मुख लागहि ललाम।
७४
भक्तन घर बांचहिं पुरान ; तुलसि लहहिं धन औरु मान।
७५
रत्नावलि तिहि चप चकोरि ; मधुर वचन बोलति निहोरि।
कबहु न अप्रिय कहति बात ; कबहु न सो पति सों रिसात।
७६
मींजति नित पति पांय पीठि ; नितहिं न्हवावति प्रेम दीठि।
७७
पति वियोग नहिं छिन सुहात ; जात कहूं मुख उतरि जात।
करति मोह जो पतिहि चाह ; पति सेवन मन अति उछाह।
७८　　७९　　८०　　८१　　८२
कबहु तासु जो पति रिसाइ ; पायंनु परि लवइ मनाइ।

८३ जौ लौं पति भोजन न ८४ पाइ ; तौ लौं आपुहु कछु न पाइ ।

जो मन सोई वचन ८५ कर्म ; पतिहि लुकावति कछु न मर्म ।

तारापति नामक ८६ सुपूत ; भयो तासु बुधि बल अकूत ।

गयो दैव गति ८७ स्वर्ग धाम ; बिलपति रत्नावली बाम ।

भयो पुत्र को अधिक सोक ; धरी धीर ८८ पति मुख बिलोक ।
तुलसी हू बहु करत प्यार ; रत्नावलि भइ हृदय हार ।

ताहि न चाहत ८९ आंपि ओट ; ओट होति हिय लगति चोट ।

सिथिल परी प्रभु भजन रीति ; बाढ़ी तिय ९० महं अधिक प्रीति ।

ब्याह भयें दस पंच वर्ष ; इक ९१ दुपं तजि बीते सहर्ष ।

९२ रापी बांधन एक बार ; भ्राता संग हिय ९३ हरष धार ।

पति आयसु गहि सीस ९४ नाइ ; गई माइके सदन ९५ धाइ ।
इत तुलसी करिबे नहाइ ; गये सुमिरि उर अवधनाइ ।

तुलसी ग्यारह दिन बिताइ ; आये ९६ तिनहिं न घर सुहाइ ।

रत्नावलि मन ९७ लपन चाह ; चले ससुर घर भरि ९८ उछाह ।
उमाह

होनहार बलवान होत ; जस ९९ भवितव तस ज्ञान होत ।

नारि प्रेम मद गये मोइ ; चले समय को ज्ञान खोइ[१००]।
बीति गईं तव अरध राति ; नभ घन चपला चमकि जाति।
बहति जोर सुरधुनी धार ; ताहि पैरि करि गये पार।
दीनबन्धु की पौरि[१०१] आय ; टेरि दए घर के जगाय।
द्वारहि[१०२] आये तत्तहिं[१०३] काल ; तुलसिहि[१०४] लखि भे चकित[१०५] ख्याल।
करि प्रनाम कहि कुशल[१०६] बात ; हाँ कहि तुलसी मन लजात।
करि आदर समयानुसार ; पौढाये[१०७] करि बहु दुलार।
रत्नावलि एकान्त[१०८] पाइ ; पति दरसन हित[१०९] गईं धाइ।
पति पद परसे[११०] करि प्रणाम ; चरन दबावन लागि[१११] बाम।
पूछी किमि आए[११२] अबेरि ; गरजत घन गाढी अँधेरि।
कैसे उतरे गंगधार ; मेरे जिय[११३] अचरज अपार।
इमि सुनि बोले तुलसिदास ; तुमहिं मिलन अति उर उलास।
तुम बिन परत न मोहि चैन ; भई शान्ति[११४] तव लखत नैन।
तव सुप्रेम[११५] महँ गंगधार ; सुमुधि[११६] सहज ही भयो पार।
कहि रत्नावलि[११७] प्राननाथ ; धन्य आपको[११८] मिल्यो साथ।
मेरे हित बहु दुख[११९] उठाइ[१२०] ; दरस दयो तुम नाथ आइ[१२१]।

मो सम को बड़भाग नारि; मो सम को तिय पतिहि प्यारि।
सीम प्रेम तुम करी पार; नाथ प्रेम के तुम अधार।
मम सुप्रेम निज हिये धार; उतरे प्रिय सुरसरित पार।

१२२
जगअधार पद प्रेम धार; जातु मनुज भव उदधि पार।
प्रेमहीन जीवन असार; नाथ प्रेम महिमा अपार।

१२३
सुनि रत्नावलि भव्य बानि; भवविषयनु सों भई ग्लानि।
भये चित्रसम तुलसिदास; कछु जनु सोचत भे उदास।

१२४
रत्नावलि पति नींद जानि; गई परसि पद जोरि पानि।
दैव मिलन को कर्यो अन्त; कहूं नारि अब कहूं कन्त।
जहाँ योग तहं है वियोग; धरत भोग सो लहत सोग।

१२५
काल कर्म गति है विचित्र; बनत शत्रु जो रहे मित्र।
आजु करत नर कछु विचार; कालि होत कछु होनहार।
राम लैन कहं योवराज; वन गे तजि सो राज बाज।

१२६
जो तुलसिहि प्रानन पियारि; सो रत्नावलि दइ बिसारि।
गृहजन सोवत करि प्रमान; अचक कियो तुलसी पयान।

१२७
रैनि गई उदयो प्रभात; तुलसी काहु न कहुं लपात।

१२८ १२९
बूझि फिरे सब गाम माहिं; सबनु कही हम लपे नाहिं।
जहं जहं तुलसी मिलन आस; मिले न तहुं सब भे उदास।

१३०
पति बिनु रत्नावली दीन ; बिलपति जल बिनु जथा मीन ।
१३१
बहु दिन त्याग्यो पान पान ; रुदन कर्यो धरि नाथ ध्यान ।
१३२
बीते बहु दिन पाप मास ; भई न तुलसी मिलन आस ।
१३३
तजि दीने सब ही सिंगार ; करति एक बारहिं अहार ।
उत्तम भोजन बसन त्यागि ; सुलगति प्रिय पति बिरह आगि ।
तुलसि पादुका उर लगाइ ; सोवति धरन आसन बिछाइ ।
कबहु रामपुर बसति जाइ ; कबहु बदरिका रहति आइ ।
तिन चांद्रायन बरत धार ; पूरन कीने बिपुल बार ।
धारे औरहु ब्रत अपार ; सती धरम निबह्यो सम्हार ।
मन बच करमन रही पूत ; कर्यो भजन प्रभु तिन अकूत ।
जासु पतिब्रत दृढ़ निहारि ; भई अनेकन सती नारि ।
१३४
देती नारिन सीप नीक ; रही दिपावति धरम लीक ।
१३५
पति बियोग महं साधि जोग ; त्यागि दये सब जगत भोग ।
१३६
धरन सदन रज जासु कोइ ; धरत देह रुज रहित होइ ।
१३७ १३८
भू शर रस भू बरस पूरि ; स्वर्ग गई लहि सुजस भूरि ।
धनि रत्नावलि मात धन्य ; जेहि सम अब कहं जगत अन्य ।
१३९ १४०
नभ कर बसु भू बिक्रमीय ; शूकर तीरथ बंदनीय ।
१४१ १४२
साध्वी रत्नावलि कहानि ; बृद्धन मुख जस परी जानि ।

द्विज मुरलीधर चतुर्वेद ; लिपि प्रगटी जगहित सभेद ।

इति श्रीरत्नावली चरितं संपूर्णम् शुभम् । संवत् १८७६

श्रावण शुक्ला १ प्रतिपदायाम् शुक्रवासरे लिखितं

१४२ (क)

चतुर्वेद मुरलीधरेण सोरों क्षेत्रे ॥ शुभं भवतु ॥

छप्पै

एक पितामह सदन दोउ जनमें बुधिरासी ;
दोऊ एकहि गुरु नृसिंह बुध अन्ते वासी ।
तुलसिदास नंददास मते द्वै मुरली धारे ;
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे ।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर महं रहे ;
१४३
एक रामगाथा लिपी एक भागवत पद कहे ॥ १ ॥
एक पिता के पूत दोउ बलराम मुरारी ;
मुरलि चक्र इक धर्‌यो एक हल मूसल धारी ।
नीलांबर तनु एक एक पीतांबर धारो ;
दोउन चरित उदार रह्यो मत न्यारो न्यारो ।
इमि कर्तव रुचि मत प्रकृति जन जन कीन समान जग ;
१४४
जनमि एकहू गृह गहें निज स्वभाव अनुरूप मग ॥ २ ॥

१४५

जय जय आदि वराह क्षेत्र तपभूमि सुहावनि ;
बहति जहां सुरसरित दरिद दुरितादि बहावनि ।
लसत विविध सुरसदन भक्त जन जीय लुभावन ;
सकल अमंगलहरन करन मंगल मुनि भावन ।
विप्रवृन्द जोगी जती बरनत बेद पुरान जहं ;
मुरलीधर अघ पाइयत दूजो इत नर्हिं धाम कहं ॥ ३ ॥

उभय [१४६] संधि महं देव [१४७] आरती भक्त उतारत ;
घंटा दुंदुभि शंख [१४८] झांझ धुनि मोद पसारत ।
भक्त भक्ति मदमत्त तहां प्रभु को जस गावत ;
मृदॅग [१४९] मंजु मंजीर तार झनकार सुहावत ।
जय गंगा वाराह को पावन धुनि कान [१५०] परत ;
तीर हरिपदी तीर द्विज मुरलीधर संध्या करत ॥ ४ ॥
विपुल सिद्ध मुनि वृद्ध सन्तजन वृन्द बसत जहं ;
श्रीहरि पदनु [१५१], प्रसूत हरिपदी लोल लसत जहं ।
तासु कूल सोपान सेनि नयनाभिराम जहं ;
भक्ति ज्ञान वैराग पुंज वाराह धाम तहं ।
बहु पुन्यन सों पाइयत दरस क्षेत्र [१५२] वाराह महि ;
केतिक पुन्यनु [१५३] फललह्यो द्विज मुरली जहं जनम गहि ॥ ५ ॥
सुख दुख बीते असी लगे मुरली इक्यासी ;
बसत सौकरव आस कटे बंधन चौरासी ।
दीठि भई अब मंद डुलत सिर कंपत कछुक कर ;
तदपि न मानत लिखन कहत मन कविता सुंदर ।
सो अब कस चालक बनहिं मन बहलावन करि रहे ;
जिमि जन बिन दसनन चनक पीसि पीसि सुख [१५४] भरि रहे ॥ ६ ॥

श्रीरामवल्लभ मिश्र की प्रति के अनुसार रत्नावली-चरित के पाठान्तर

१ वन्दहुँ
२ वन्दहुँ
३ नाय
४ गाय
५ अनसूया
६ लिखहुँ
७ लिखहुँ
८ खेत
९ सेत
१० खेत
११ क्षेत
१२ ऊख
१३ बहुरि
१४ पुनि
१५ पखारि
१६ बहुरि
१७ स्तुति
१८ दुरग
१९ लखाहि
२० क्षेत्र
२१ खजूर
२२ पूर
२३ जहं
२४ सुख
२५ सुतंत्र
२६ सांति
२७ ग्यान
२८ रिखि
२९ धाय
३० आय
३१ एक
३२ विवेक
३३ हंस
३४ खट
३५ सील
३६ संकर
३७ संभू
३८ रतना
३९ जिहि
४० लखि
४१ दुखित
४२ सान्ति

४३ सील
४४ सुख
४५ सुख
४६ लखात
४७ सीखि
४८ श्रांखर
४९ मखर
५० पठाय
५१ कोसहु
५२ तिहि
५३ घुकाय
५४ पिगल
५५ सिव
५६ लखि
५७ दुखित
५८ तवै
५९ वैष्नव
६० श्रखिल
६१ पाटसाल
६२ श्रातम
६३ ससोक
६४ साख
६५ मैं
६६ सुसील
६७ देख्यो
६८ सुख
६९ सुख
७० सुख
७१ सबद
७२ सुगेह
७३ सुख
७४ तुलसि
७५ घख
७६ पांयं
७७ सुख
७८ हू
७९ खिमाइ
८० पाइंतु
८१ लेवहि
८२ मनाय
८३ जौलों
८४ खाइ
८५ पतिहिं
८६ सपूत
८७ सुरग
८८ सुख
८९ श्राखि
९० में
९१ दुख
९२ राखी
९३ हरख
९४ नाय

९५ धाय	१२१ आय
९६ तिनहिं	१२२ जात
९७ लखन	१२३ रतनावलि
९८ उछाह	१२४ नीद
९९ ग्यान	१२५ सत्रु
१०० खोइ	१२६ रतनावलि
१०१ पौरि	१२७ लखात
१०२ द्वारहिं	१२८ लखे
१०३ सतहि	१२९ नाहिं
१०४ लखि	१३० रतनावली
१०५ स्याल	१३१ स्नान
१०६ फुसल	१३२ पाख
१०७ पौढाये	१३३ करत
१०८ पाय	१३४ सीख
१०९ धाय	१३५ में
११० प्रनाम	१३६ इस पाठ में यह पंक्ति नहीं है।
१११ धाम	१३७ सर
११२ आये	१३८ सुरग
११३ जिय	१३९ विकरमीय
११४ सान्ति	१४० सूकर
११५ में	१४१ विरधन
११६ सुमुखि	१४२ सुख
११७ रतना	१४२ (क) इति श्रीरतनावली संपूरणम् लिपितम् श्रीमुरलीधर चतुरवेदि-
११८ आपुको	
११९ दुख	
१२० उठाय	

सिष्येन रामवल्लभमिश्रेन सोरों मध्ये संवत् १८६४॥ मार्गशिरमासे शुक्लपक्षे ६ शनिवासरे । कृष्णाय नमः शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् शुभम् भूयात्

१४३ यह छप्पय इस पाठ में नहीं है ।

१४४ यह छप्पय इस पाठ में नहीं है ।

१४५ छेत्र

१४६ उमै

१४७ में

१४८ संख

१४९ मृदंग

१५० कामन

१५१ पदन

१५२ छेत्र

१५३ पुष्पन

१५४ यह छप्पय इस पाठ में नहीं है ।

मुरलीधर चतुर्वेदिकृत

रत्नावली-चरित

गद्यानुवाद

श्रीगणेशजी को नमस्कार। श्रीसरस्वतीजी को नमस्कार। आत्माराम सुकुल के कवींद्र एवं महात्मा पुत्र की जय हो; वह विष्णु और शिव के भक्त और धर्म-कर्म में अनुरक्त हैं; उनका यश तीनों लोकों में व्याप्त है; वह कांति और कामदेव की मूर्ति तथा स्वभाव से भगवान् राम का गुण-गान करनेवाले हैं ॥ १ ॥

वंदनीय बुध एवं शुक्ल-वंश के तिलक, ब्राह्मण-श्रेष्ठ तुलसी (दास) की जय हो, जो रत्नावली के मुख-चंद्र के लिये चकोर और भगवान् रामचंद्र के चरण-कमल के लिये भ्रमर एवं सूकर-तीर्थ के भी तीर्थ हैं ॥ २ ॥

मैं दंतुर भगवान् वाराह और सनक आदिक मुनीश्वरों को प्रणाम करता हूँ; पार्वती, सरस्वती को सिर नवाकर, सीता-सावित्री के गुण गाकर (वशिष्ठ-पत्नी) अरुंधती, (नल-पत्नी) दमयंती, (अत्रि-पत्नी) अनसूया एवं (धृतराष्ट्र-पत्नी) गांधारी को और पृथ्वीतल पर जितनी सती स्त्रियाँ हो गई हैं, उन सबको प्रणाम करके रत्नावली की गाथा उसके चरणों में माथा टेककर लिखता हूँ। उसका चरित बड़ा गंभीर है, तो भी धीरज धरकर कुछ लिखता हूँ। वह चरित शास्त्र-प्रसिद्ध पापों को नाश करने-वाला और पतितों को पवित्र करनेवाला है।

गंगाजी के दाहने किनारे के पास की भूमि बड़ी पुण्य और मंगल देनेवाली है, जहाँ जगत्पति भगवान् हरि अपने करुणामय स्वभाव के वशीभूत हो (संसार की रक्षा के निमित्त) वराह-रूप से प्रकट हुए थे।

इससे यह भूमि वाराह-क्षेत्र नाम से संसार-सागर से पार करनेवाले पुल के समान हो गई है।

यह तीर्थ सूकर-खेत नाम से लोगों को मुक्ति देनेवाला धाम प्रसिद्ध हो गया। यहाँ अनेक और-और तीर्थ भी विराजते हैं, जिनमें स्नानादि करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं; यहाँ मुनिजनों ने अपने संसार के भय और भ्रांति को मिटाकर शांति का लाभ किया है। संसार में जितने बड़े-बड़े तीर्थ हैं, उन सबका फल यहीं मिल जाता है। यहाँ पर एक तो भागीरथी गंगा दूसरे वाराह-क्षेत्र है, मानो मधुर ईख में फल भी लग रहे हों (सोने में सुगंध है) अथवा यहाँ एक तो गंगाजी बहती हैं दूसरे वाराह-क्षेत्र है; यहाँ की देन मधुर ईख तो है ही, (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों फल भी हैं।

यहाँ श्रीवाराह भगवान् का एक सुहावना मंदिर बना है, और भी अनेक देवताओं के मंदिर विराजमान हैं, जिनमें से बहुत-से मुसलमानों ने तोड़-फोड़ डाले थे, पर भक्तजन उन्हें बार-बार बनवाते रहे। यहाँ गंगाजी की धारा ऐसी बह रही है, मानो वराह भगवान् के पैर धो रही हो। यहाँ वेद-धर्म का प्रकाश करते हुए ब्राह्मण लोग निवास करते, चित्त लगाकर नित्यप्रति पुराणों की कथा बाँचते और भगवान् की कीर्ति का गान करते हैं। यहाँ योगिजनों के निवास-स्थान (मठ) और उनकी समाधियाँ बनी हैं, जिनके दर्शन करने से रोग नष्ट होते हैं।

यहाँ वेद-धर्म को माननेवाला मोरंकी-वंश का सोमदत्त-नामक राजा हुआ है। उसका क़िला अब नहीं रहा, किंतु उसके कुछ-कुछ

चिह्न दिखाई देते हैं। इस सोरकी राजा के शुभ नाम से यह क्षेत्र सोरंकियों का ग्राम प्रसिद्ध हो गया। उसके पश्चिम की ओर निम्न भूमि (कछार) में गंगाजी की पुरानी धार बहती थी। किसी समय इसके पश्चिम किनारे पर एक बड़ा सुंदर स्थान था, जो बदरिया-वन के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पशु-पक्षी नहीं मारे जाते थे। इसमें भाँति-भाँति के गुल्म-वृक्ष, लता-वल्ली, बड़, पिलखुन, पीपल, आम, कदम, नीम, जामुन, खजूर, शीशम, बेर आदि लगे हुए थे। यहाँ अनेक प्रकार के पक्षी कलोल करते और मृग आदि पशु स्वतंत्रता-पूर्वक सुख से विचरते थे। बदरी-वन-भूमि में एक विशाल स्थल था, जहाँ मुनियों के सुंदर कुटीर बने हुए थे, जिनमें सदा ज्ञान वायु का संचार होता था। यहाँ ऋषि-मुनि, बैरागी, सिद्ध, साधु, योगी, अच्छे-अच्छे भगवद्भक्त बसते थे, परंतु काल की गति से वह मुनियों का निवास-धाम गृहस्थों के रहने का ग्राम बन गया, और उस बदरिया नाम के ग्राम में भिन्न-भिन्न जाति के लोग आकर बस गए।

यहाँ एक उत्तम ब्राह्मण रहता था। वह वेद शास्त्र विद्या में बड़ा निपुण था। इसका शुभ नाम दीनबंधु पाठक था। वह ईश्वर का भक्त एवं अनेक गुणों का निधान था। वह उपाध्याय-वृत्ति करता हुआ षट्कर्म में सावधान, सदा शुभ कर्म करता रहता था। उसकी स्त्री का नाम था दयावती, जो बड़ी पतिव्रता, शीलवती और बहुगुणों की आगार थी। इस दंपती के तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे शिव, शंकर और शंभु। तीनों ही बड़े चतुर थे। इनसे छोटी रत्नावली नाम की एक कन्या थी, जिसने (अपने सदाचरण से) अपने पिता और पति, दोनों के कुल को पवित्र किया। इसका रूप बड़ा ही मनोहर था, मानो ब्रह्माजी ने इसे रच पचकर बनाया हो।

यह माता-पिता की बड़ी दुलारी एवं निज कुटुंब और नगर-वासियों की प्यारी थी। यह सबसे मीठे वचन बोलती थी। इसे देखकर कैसा ही दुखिया हो, चैन पाता था। इसकी हँसनि और चितवन अनोखी थी। यह सुख, शांति, शील और स्नेह का रूप थी। इसे देखकर मोह-रहित भी मोहित हो जाते थे, प्रेमियों की तो बात ही क्या।

यह गूढ़ ज्ञान की चर्चा करती ; इसके छोटे मुँह से बड़ी बात सुहावनी लगती थी। बालकपन में ही यह घर के सब काम, विविध प्रकार के भोजन बनाना आदि सीख गई थी।

अपने भाइयों को पढ़ता हुआ देखते-देखते आप स्वयं ही अक्षरों का पढ़ना-लिखना सीख गई। पिता ने इसकी तीव्र बुद्धि जान-कर पट्टी-बुदिका ला दिए। थोड़े ही दिनों में यह इतनी योग्य हो गई कि लोग इसे सरस्वती कहने लगे। इसके पिता ने इसे व्याकरण पढ़ाया, और कोष भी कंठस्थ करा दिया। जब यह वाल्मीकि-रामायण पढ़ने लगी, तो इसकी सरस्वती जाग उठी। यह छंद-शास्त्र पिंगल के नियम जान गई, और इसे कविता करने का भी अभ्यास हो गया। यह पार्वती-महादेव का ध्यान किया करती और बड़े भाव के साथ विविध प्रकार से उनका पूजन करती थी।

जब पिता ने देखा कि पुत्री विवाह योग्य हो गई है, तो मन में विचार किया कि किस घर इसका भोग बदा है। वह वर के लिये अनेक गाँव ढूँढ़ फिरे, परंतु कहीं मनोरथ पूरा नहीं हुआ। तब तो वह चित्त में बहुत दुखी हुए कि पुत्री के योग्य वर मिलता ही नहीं। उस समय एक मित्र ने इनको पता दिया कि तुम गुरु नृसिंहजी के पास जाओ; वह पवित्र स्मार्त वैष्णव हैं, और संपूर्ण वेद और शास्त्रों के बड़े विद्वान् हैं। चक्र-तीर्थ के पास उनकी

पाठशाला है। वहीं वह बहुत-से बालकों को पढ़ाते हैं। वहाँ रामपुर-निवासी सनाढ्य-कुल के भूषण बड़े गुणवान् विद्यार्थी तुलसीदास और नंददास पढ़ते हैं, और विद्या में उन्नति कर रहे हैं। ये दोनो एक ही बाबा के पौत्र हैं, तीसरे चंद्रहास भी, जो इनसे छोटे हैं। तुलसीदास आत्माराम के पौत्र हुलासो के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। जब ये दोनो (माता-पिता) स्वर्गलोक सिधार गए, तब दादी और पोते को बहुत शोक हुआ। ब्राह्मण-वंश के अलौकिक दीपक (तुलसीदास) जोगमार्ग के पास रहते हैं। वह सदा राम-राम कहा करते हैं, इससे उनका नाम 'रामोला' प्रसिद्ध हो गया है। उनका रंग गोरा है। वह विद्या के निधान और विविध शास्त्रों के बड़े पंडित हैं। वह काव्य-रचना में बड़े चतुर और सब प्रकार की बुराइयों से रहित हैं। वह सब प्रकार से रत्नावली के योग्य हैं, बड़े सुशील हैं, और शरीर में कोई रोग नहीं है।

मित्र के ऐसे प्रिय वचन सुनकर पाठकजी प्रसन्न हुए, और गुरु नृसिंह के पास पहुँचे; उनको प्रणाम किया, और तुलसी के सुंदर मुख का दर्शन किया।

गुरुजी के मुख से उनका परिचय प्राप्तकर एवं गोत्र-कुल-ग्राम आदि की विधि मिलाकर वाग्दान (पुत्री देने का वचन) दिया, और मन में बड़े प्रसन्न हुए। पुनः अपनी वंश-परंपरा के अनुसार विवाह की पीली चिट्ठी भेज दी, और फिर लग्न-पत्रिका भेजकर विवाह की सब रीति यथावत् की। शुभ दिन में बरात आई। पुत्र और पुत्रीवाले दोनो पक्ष के लोग प्रसन्नता से अंग में फूले नहीं समाते थे। दीनबंधु ने हृदय की प्रसन्नता और उत्साह के साथ विवाह का कृत्य विधि-पूर्वक संपन्न किया। तुलसीदास के हाथ में वेद-विधि से रत्नावली का हाथ दिया। अनंतर रत्नावली तुलसीदास के घर गईं। उसका प्रेम पति के चरणों में बढ़ता गया।

रत्नावली-सी स्त्री पाकर तुलसीदास के घर में सुख आ गया। तुलसी की दादी ने बहुत दुःख सहकर, छाती से लगाकर इनका पालन-पोषण किया था। वह तुलसीदास और रत्नावली की सेवा से कुछ दिन सुखी हो स्वर्गवासिनी हो गईं।

नंददास और चंद्रहास रामपुर में अपनी माता के पास रहते रहे। और, यह दंपती (तुलसीदास और रत्नावली) वाराह-धाम (सूकर क्षेत्र) में वास करते हुए आठों पहर प्रसन्न रहते थे। कभी शास्त्र-चर्चा का आनंद लूटते और कभी कविता-रचना कर आमोद-प्रमोद में मग्न होते थे। यह प्रतिदिन संध्या-वंदन आदि नित्य-कर्मों का संपादन कर गृहस्थ-धर्म का पालन करते, अपने घर में रामजी की सुंदर मूर्ति रखते और प्रातः-सायं दोनो समय बड़े प्रेम के साथ पूजन करते थे। बात-बात में राम-राम का उच्चारण तुलसीदास के मुख से बड़ा अच्छा लगता था। तुलसीदासजी भगवद्-भक्तों के घरों में पुराणों की कथा बाँचकर धन और प्रतिष्ठा पाते थे। पति के नेत्र-चंद्र की चकोर-रूप रत्नावली प्रेम-आदर के साथ मीठे वचन बोलती थी। वह कभी अप्रिय बात नहीं कहती और न कभी पति पर क्रोध करती। नित्यप्रति पति के पैर और पीठ मलती और प्रेम-पूर्वक स्नान कराती थी। उसको पति का वियोग क्षण-भर को भी नहीं सुहाता था। पति के कहीं चले जाने पर उसका मुँह उतर जाता। पतिदेव जो चाहते, वही वह करती। पति की सेवा में उसे बड़ा उत्साह था। यदि कभी किसी बात से पतिदेव क्रुद्ध हो जाते, तो पैरों पड़कर उन्हें मना लेती। जब तक पतिदेव भोजन न कर लेते, तब तक आप भी कुछ नहीं खाती। जो बात उसके मन में होती, वही वचन और कर्म से प्रकट कर देती। पति से कोई भेद की बात नहीं छिपाती। दंपती के तारापति नाम का एक सुपुत्र उत्पन्न हुआ, जो बड़ा बुद्धिमान् और पुष्ट था। परंतु

दैव-गति से उसका स्वर्ग-वास हो गया। इस अबला रत्नावली ने बहुत विलाप किया। पुत्र का शोक तो इसको बहुत हुआ, परंतु पति का मुखावलोकन कर धीरज धर लिया। तुलसीदास भी रत्नावली को बहुत प्यार करते थे, यह इनके हृदय का हार हो रही थी। वह उसको आँखों से परे नहीं करना चाहते थे। जब कभी वह आँख-ओट हो जाती, तो इनके हृदय में बड़ी चोट लगती थी। स्त्री में इनका इतना अधिक प्रेम हो गया कि भजन-पूजन में भी ढील होने लगी। इनके विवाह को पंद्रह वर्ष बीत गए। यह समय एक दुःख के सिवा बड़े हर्ष से कटा।

एक समय की बात है। रत्नावली राखी बाँधने के लिये पति से आज्ञा ले, प्रणाम कर, मन में प्रसन्न हो, भाई के साथ अपनी मा के घर गई। इधर तुलसीदासजी रामायण का नवाह्न (नौ दिन की कथा) करने के लिये मन में (भगवान् अयोध्यानाथ रामचंद्र का) ध्यान धर चले गए। फिर ग्यारह दिन के अनंतर कथा समाप्त कर जब घर लौटकर आए, तो घर में इनका मन नहीं लगा, और रत्नावली को देखने की मन में प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई, इसलिये उत्साह के साथ ससुर के घर चल पड़े। होनहार बड़ी बलवान् है। जो कुछ होना होता है, होकर रहता है। वैसी ही बुद्धि हो जाती है। स्त्री के प्रेम-मद में तुलसी उन्मत्त हो गए, समय का भी ज्ञान न रहा, चल दिए। उस समय आधी रात बीत गई थी। आकाश में बादल थे। बिजली चमक-चमककर रह जाती थी, गंगाजी की धारा बड़े वेग से बह रही थी। वह पैरकर उसको पार कर गए, और दीनबंधु पाठक के घर पहुँच, आवाज़ देकर घर के सब लोग जगा दिए। वे सब उसी समय दरवाज़े पर आ गए। तुलसीदास को देखकर उनके साले भौचक्के रह गए। प्रणामकर कुशल-क्षेम पूछी, सो तुलसीदास 'हाँ' कहकर मन में लज्जित हुए। (ससुराल-

वालों ने) समय के अनुसार आदर-मान कर प्रेम के साथ उनको सुलाया। (थोड़ी देर में) रत्नावली एकांत पाकर हर्ष से पति के दर्शन के लिये पति के पास गई। चरण छूकर पतिदेव को प्रणाम किया, और चरण पकड़कर धीरे-धीरे दाबने लगी, और पूछा—"इतने अँधेरे क्यों आए। बादल गरज रहे हैं। अँधेरी रात है। गंगाजी की धार कैसे पार की ? मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हो रहा है।" ये वचन सुनकर तुलसीदास बोले—"तुमसे मिलने को मेरे मन में प्रबल इच्छा हुई, तुम्हारे बिना मुझको चैन नहीं पड़ा। अब तुम्हें नेत्रों से देखकर मुझको शांति मिली है। हे सुमुखि, तेरे प्रेम से मैं गंगाजी की धार सहज ही पार कर आया।" इस पर रत्नावली ने कहा—"हे प्राणनाथ, मुझे धन्य हैं, जो आपका साथ मिला। नाथ, मेरे लिये आपने बहुत दुःख उठाया, और यहाँ आकर मुझको दर्शन दिया। मेरे समान बड़भागिनी स्त्री संसार में दूसरी कौन है ? मेरे समान पति की प्यारी स्त्री दूसरी कौन है ? तुमने प्रेम की सीमा पार कर डाली। हे नाथ, तुम प्रेम के आधार हो, मेरे प्रेम को अपने हृदय में रखकर हे प्रिय, तुम गंगाजी को पार कर आए। जगदाधार श्रीभगवान् के चरणों में प्रेम कर मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। प्रेम के बिना जीवन असार है स्वामिन्! प्रेम की महिमा का पार नहीं।" (इस प्रकार) रत्नावली की सुंदर वाणी सुनकर (तुलसीदास को) सांसारिक विषय वासनाओं से ग्लानि हो गई। वह चित्र के समान स्थगित रह गए, और मन में कुछ विचार करते हुए-से उदास हो गए।

रत्नावली समझी, पतिदेव को नींद आ गई, इससे हाथ छोड़, चरण छूकर चली गई। अब तो दैव ने दोनों के मिलन का अंत ही कर दिया; पति कहीं और पत्नी कहीं। जहाँ संयोग है, वहाँ

वियोग भी। जो भोग भोगते हैं, वे शोक भी पाते हैं। काल और कर्म की गति बड़ी विचित्र है, जो कभी मित्र रहे थे, वे ही शत्रु भी बन जाते हैं। मनुष्य जो कुछ आज सोचता है, वह होनहार के वश कल कुछ और ही हो जाता है। श्रीराम को गद्दी होनेवाली थी, किंतु राज छोड़कर उन्हें वन जाना पड़ा। तुलसीदास को रत्नावली प्राणों से भी प्यारी थी, किंतु उसी रत्नावली को त्यागकर वह चले गए।

घर के लोगों को सोता जान तुलसीदास सहज में चलते बने। रात बीत गई, सबेरा हुआ, परन्तु तुलसीदास किसी को कहीं न दिखाई पड़े। आस पास के सब गाँवों में लोगों से पूछा गया, परन्तु उत्तर यही मिला कि हमने तुलसीदास नहीं देखे।

जहाँ-जहाँ तुलसीदास के मिलने की आशा थी, वहाँ जब वह न मिले, तो सब लोग उदास हो बैठे। पति को न पाकर रत्नावली ऐसे व्याकुल हुई जैसे जल के बिना मछली तड़फती है। बहुत दिन तक खाना पीना भी त्याग दिया, और स्वामी का ध्यान कर रोती रही। बहुत से दिन, पक्ष और महीने बीत गए, और जब तुलसीदास के मिलने की कोई आशा न रही, तब उसने सब शृंगार त्याग दिए, और रात दिन में केवल एक ही बार भोजन करने लगी। उत्तम भोजन और बहुमूल्य वस्त्र पहनना छोड़ दिया। प्रियतम के विरह की आग उसके हृदय में सुलगती रहती थी। वह तुलसीदास की खड़ाऊँ छाती से लगा, भूमि पर कुशासन बिछा-कर सोती, कभी (सूकरखेत से) रामपुर जाकर रहती और कभी बदरिका में आकर रहती थी। उसने कई बार चान्द्रायण-व्रत पूर्ण किए, तथा और भी अनेक व्रत रक्खे थे। (इस प्रकार) सती-धर्म का अच्छी तरह पालन करती हुई वह मन, वाणी और कर्म से सदा पवित्र और मन लगाकर भगवान् के भजन में तत्पर

रही। उसके दृढ़ पतिव्रत-नियम को देखकर अनेक नारियाँ सती बन गईं। वह (अपने जीवन में) स्त्रियों को उत्तमोत्तम शिक्षा देती और उनको धर्म का मार्ग दिखाती रही। पति के वियोग में योग साधकर उसने संसार के सब भोगों का परित्याग कर दिया। जो इसके चरण और गृह की धूलि को शरीर से लगाता है, वह नीरोग हो जाता है। इस भाँति वह संसार में बड़ा यश पाकर सं० १६२१ वि० के अंत में स्वर्ग सिधार गई। हे रत्नावली माता, तुमको धन्य है। तुम्हारे समान संसार में अब दूसरी स्त्री कहाँ?

सं० १८२६ वि० में जगद्वंदनीय सूकरक्षेत्र-तीर्थ में सती रत्नावली की यह कथा जैसी वृद्धों के मुख से सुनी, वैसी ही मुझ द्विजवर मुरलीधर चतुर्वेदी ने संसार की भलाई के लिये लिखकर प्रकट की।

इस प्रकार श्रीरत्नावली-चरित समाप्त हुआ। चतुर्वेदी मुरलीधर ने * सोरों-क्षेत्र में संवत् १८२६ श्रावण शुक्ला १ पड़वा शुक्रवार को इसे लिखा। शुभ होवे?

---

* उक्त कवि मुरलीधर चतुर्वेदी का जन्म सं० १७४६ वि० में हुआ था।

श्रीगणेशाय नमः

रत्नावली के दोहे

(रत्नावली लघु दोहा-संग्रह)

अथ रत्नावली-विरचित दोहा लिख्यते ।

हाय सहज ही हौं कही
    लह्यौं बोध हिरदेस
हौं रतनावलि जँचि गई
    पिय हिय काँच विसेस ॥१॥१॥

हाय = हा । हौं = अहम् (मैं)। लह्यौं = लाभ किया। बोध = तत्त्वज्ञान, वैराग्य। हिरदेस = हृदयेश। रतनावलि = रत्नावली। पिय = प्रिय। हिय = हृदय। विसेस = विशेष।

हाय ! मैंने तो सहज स्वभाव से ही यह बात कही थी [कि "सीम प्रेम तुम करी पार, नाथ, प्रेम के तुम अधार। मम सु-प्रेम निज हिये धार, उतरे प्रिय, सुरसरित-पार। जग-अधार पद-प्रेम धार, जात मनुज भव-उदधि-पार। प्रेम-हीन जीवन असार, नाथ! प्रेम-महिमा अपार।" रत्नावली-चरित], किंतु मेरी इस

बात से मेरे प्राणनाथ (तुलसीदासजी) को ज्ञान हो गया। प्यारे के हृदय में रत्नावली नाम की मैं ही विशेष रूप से काच के समान (हेय) प्रतीत हुई।

पाठ-भेद—१ हाइ, लह्यो, कैंनि । २ हाइ, लह्यो, हौं, अची गई, काच । ३ दोहा रत्नावली हाइ, अचि, काच, लह्यो ।

जनमि बदरिका कुल भई
हौं पिय कंटक रूप
विंधत दुखित ह्वै चलि गए
रत्नावलि उर भूप ॥२॥२॥

दुखित = दुःखित । ह्वै = होकर । विंधत = विद्ध ।

बदरिया नाम के गाम में एक ब्राह्मण-परिवार में जन्म धारण करके (विवाहानंतर) मैं प्रिय पति के लिये (सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से) काँटे के समान दुःखदायिनी हो गई। (मेरे वचन-बाण से) विद्ध होकर मुझ रत्नावली के हृदयेश (अर्थात् तुलसीदासजी तत्कालीन जीवन से) उद्विग्न होकर (राम-भजन के लिये) चले गए। न-जाने क्या-क्या कष्ट सहते होंगे।

१ हौं । २ हो पिय, रुप, ह्वै, गए । ३ बदरिका, हौ, रूप ।

हाइ बदरिका बन भई
हौं बामा विष बेलि
रत्नावलि हौं नाम की
रसहिं दयो विष मेलि ॥३॥३॥

बामा = (१) प्रतिकूल, विपरीत, (२) स्त्री।

हाय ! मैं बदरिया-रूपी वन में कुटिल, विषैली बेल के समान पैदा हुई। मैं नाम की हीं रत्नावली हूँ। मैंने रस में विष मिला दिया।

१. हौं, बामा, हौं। २ हौं, बोसमेलि। ३. विष, बदरिका।

धिक मो कहँ मो वचन लगि
मो पति लह्यो विराग
भई वियोगिनि निज करनि
रहूँ उड़ावति काग ॥४॥१०॥

विराग=वैराग्य। वियोगिनि=वियोगिनी। काग=काक।

मुझे धिक्कार है! मेरे वचन के ही कारण मेरे पति ने वैराग्य धारण किया। मैं अपनी करनी से ही पति-वियोग का कष्ट उठाती हुई कौए उड़ाती रहती हूँ, अर्थात् व्यर्थ जीवन नष्ट कर रही हूँ।

१ मो कहं, रहूँ। २ मोको, रहूँ। ३ मो कह, लह्यो।

हौं न नाथ अपराधिनी
तौउ छमा करि देउ
चरनन दासी जानि निज
वेगि मोरि सुधि लेउ ॥५॥११॥

छमा=क्षमा। हौं=मैं। तौउ=तो भी। चरनन (चरन= चरण। न यहाँ बहुवचन का द्योतक है)। वेगि=जल्द। मोरि=मेरी।

हे नाथ, मैं अपराधिनी नहीं हूँ, फिर भी मुझे क्षमा कर दीजिए। अपने चरणों की दासी समझकर शीघ्र ही मेरी सुध लीजिए।

१ हौं। २ हौं, अपराधनी, छिमा, जान, वेग। ३ तऊ छमा, वेगि। हौं।

जदपि गये घर सों निकरि
मो मन निकरे नाहिं
मन सों निकरौ ता दिनहिं
जा दिन प्रान नसाहिं ॥६॥१२॥

जदपि = यद्यपि । ता = तिस, उस । जा = जिस । मो = मेरा ।

यद्यपि आप घर से निकलकर चले गए हैं, तथापि मेरे मन से नहीं निकले हैं, अर्थात् मैं रात-दिन आपका ध्यान करती रहती हूँ। मेरे मन से तो आप उसी दिन निकलेंगे, जिस दिन मेरे प्राण शरीर से अलग होंगे, अर्थात् मैं जीवन-पर्यंत आपका ध्यान करती रहूँगी।

१ घर सों, नाहि । २ गए, सों, निकरौ, नाहं, पिरान, नसाहं । ३ निकरहु, दिनहिं । सों ।

नाथ रहौंगी मौन हौं
धारहु पिय जिय तोष
कबहुँ न देउँ उराहनो
देउँ कबहु ना दोष ॥७॥१३॥

उराहना = उपालंभ । देउँ = दूँगी ।

हे स्वामिन्, मैं मौन धारण करके रहूँगी, अतएव हे प्रिय, अपने चित्त में प्रसन्नता धारण कीजिए। मैं कभी आपको उलाहना नहीं दूँगी, और न कभी आपको कोई दोष ही लगाऊँगी।

१ हौं, दऊं न कबहूँ दोष । २ जिय तोस, देउं न कबउं दोस । ३ तोस, दऊं, दऊं न कबऊं दोस ।

छमा करहु अपराध सब
 अपराधिनि के आय
बुरी भली हों आपकी
 तजउ न लेउ निभाय ॥८॥१४॥

छमा = क्षमा। निभाय लेउ = निर्वाह कर लो।

अब आकर मुझ अपराधिनी के सब अपराधों को क्षमा कर दीजिए। मैं अच्छी हूँ या बुरी, हूँ तो आपकी ही, अतएव मेरा त्याग न कीजिए। मुझे निभा लीजिए।

१ तजौ। २ छिमा करौ, आइ, निभाइ। ३ आइ, तजउ, निभाइ।

दीनबंधु कर घर पली
 दीनबंधु कर छाँह
तौउ भई हों दीन अति
 पति त्यागी मो बाँह ॥९॥१५॥

छाँह = छाया। बाँह = बाहु।

मैं अपने पिता श्रीदीनबंधुजी के घर में उन्हीं के संरक्षण में अथवा दीनों पर दया दिखानेवाले परमेश्वर के कर-कमल की छाया में पली। फिर भी मैं अत्यंत दीन हो गई, क्योंकि पति (श्रीतुलसीदासजी) ने मेरी बाँह छोड़ दी।

१ दीनबंधु छाह, बांह। २ दीनबंधु के घर पली, दीनबंधु के छाह। ३ दीनबंधु कर घर, दीनबंधु कर छांह। बांह।

कहाँ हमारे भाग अस
जो पिय दरसन देयँ
वाहि पाछिली दीठि सों
एक बार लखि लेयँ ॥१०॥१५॥

भाग=भाग्य। दरसन=दर्शन। वाहि=वही (उसी)। दीठि=दृष्टि।

मेरा ऐसा भाग्य कहाँ, जो प्रिय पति आकर मुझे दर्शन दें, और उसी पिछली (प्रेममयी) दृष्टि से एक बार देख लें।

१ कहाँ, देंय, वाहि, लेंय। २ पिअ, देंई, लेंई, वाइ ऐक। ३ देई, पिय, वाइ, लेई।

सनक सनातन कुल सुकुल
गेह भयो पिय स्याम
रतनावलि आभा गई
तुम बिन बन सम ग्राम ॥११॥१७॥

आभा=प्रकाश=कांति।

सनकजी* और सनातनजी के सुकुल† (शुक्ल) उज्ज्वल कुल का यह घर अब है प्रिय नाथ! (आपकी अनुपस्थिति से) स्याम

* तेहि सुत गुरु ज्ञानी भए भक्त पिता अनुहारि
पंडित श्रीधर, शेषधर, सनक, सनातन चारि।
(कृष्णदासवंशावली)

उक्त दोहे में उल्लिखित चारों व्यक्ति गोस्वामी तुलसीदासजी के पूर्वज थे।

† "दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को।"
(विनय-पत्रिका)

अर्थात् मलिन किंवा दुःख-पूर्ण हो रहा है। आपके विना इस दासी रत्नावली की सब चमक-दमक अर्थात् शृंगार-सजावट चली गई, और उसके लिये गाँव भी जंगल के समान दुःखदायी हो रहा है।

१ बिन, घन, गाम। २ रतनावली। ३ रतनावलि। गाम।

नारि सोइ बड़भागिनी
जाके पीतम पास
लपि लपि चप सीतल करै
हीतल लहै हुलास ॥१२॥३६॥

पीतम=प्रियतम। लपि=लखि (देखकर)। चप=चक्षु (नेत्र)। सीतल=शीतल। हीतल=हृत्तल। हुलास=हृदुल्लास (मन की प्रसन्नता)।

वही स्त्री भाग्यवती है, जिसका पति उसके पास है, क्योंकि वह अपने पति को देख-देखकर अपने नेत्रों को शीतल करती रहती और मन में प्रसन्नता प्राप्त करती है।

१ बड़। २ भागनी, चपि, लहे।

असन बसन भूषन भवन
पिय बिन कछु न सुहाय
भार रूप जीवन भयो
छिन छिन जिय अकुलाय ॥१३॥४०॥

असन=अशन (भोजन)। छिन=क्षण।

प्यारे पति के विना भोजन, वस्त्र, गहने, घर कुछ भी अच्छा

नहीं लगता। जीवन बोझा-सा हो गया है, और चित्त हर समय व्याकुल रहता है।

२ सुहाइ, पिय, त्रिय, अकुलाइ। ३ पिय, सुहाइ, अकुलाइ।

पिय साँचो सिंगार तिय
सब झूँठे सिंगार
सब सिंगार रतनावली
इक पिय बिनु निस्सार ॥१४॥५०॥

सिंगार=शृंगार [ये संख्या में १६ हैं।]

पति ही स्त्री के लिये सच्चा शृंगार है, और सब शृंगार तो झूठे हैं। मुझ रत्नावली के लिये एक पति के बिना सारे शृंगार सार-हीन हैं—निरर्थक हैं।

१ झूठे, बिन। २ पिय, सिंगार, तिय, इक पिय बिन निसार, ३ साँचो।

राम भगति भूषित भयो
पिय हिय निपट निकाम
अब किमि भूषित होहि है
तहं रतनावलि बाम ॥१५॥२०॥

भगति=भक्ति। हिय=हृदय। निकाम=निष्काम। बाम=वाम अथवा वामा।

सांसारिक कामनाओं से पूरी तरह से हटा हुआ पतिदेव का चित्त तो श्रीरामचंद्रजी की भक्ति से विभूषित हो गया है। अब उस हृदय में मैं स्त्री रत्नावली कैसे सुशोभित हो सकूँगी?

१ होय, बाम। २ पिय, हिय। ३ तंह।

तीरथ आदि वराह जे
तीरथ सुरसरि — धार
याही तीरथ आय पिय
भजहु जगत—करतार ॥१६॥२१॥

तीरथ=तीर्थ। वराह=वराह, वाराह । धार=धारा। जगतकरतार=जगत्कर्ता ।

हे नाथ, आप इसी तीर्थ पर आकर जगत् के रचनेवाले राम परमेश्वर का भजन कीजिए, जो आदि वराह* भगवान् के अवतार का तीर्थ है, और जहाँ गंगाजी की धारा बहती है ।

१ वराह, आह । २ जाई तीरथ आइ पिय, भजौ । ३ जाही तीरथ आइपिय, भजउ ।

प्रभु वराह पद पूत महि
जनम मही पुनि एहि
सुरसरि तट महि त्यागि अस
गये धाम पिय केहि ॥१७॥२२॥

महि=मही (पृथ्वी) । जनम=जन्म । पुनि=पुनः । सरि=सरित्, सरिता ।

यह भूमि भगवान् वराहजी के चरणों (के स्पर्श) से पवित्र है, और फिर यह आपकी जन्मभूमि† भी है। ऐसी गंगा-तट की (पवित्र) भूमि छोड़कर पतिदेव किस स्थान को चले गए।

२ प्रिभु, जनमिमही, तिआगि, गए। ३ प्रभु, जनममही, गए।

---

* यत्र भागीरथी गंगा मम सौकरवे स्थिता ;
तत्र संस्था च मे देवि••• । (वराहपुराण अ० १३७)

†"यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली ।
(विनयपत्रिका)

सबहिं तीरथनु रमि रह्यौ
राम अनेकन रूप
जहीं नाथ आऔ चले
ध्याऔ त्रिभुवन भूप ॥१८॥२३॥

जहीं = यहीं। [यकार के स्थान पर जकार के उच्चारण का यह अच्छा उदाहरण है।]

राम परमेश्वर अनेक रूप धारण कर सभी तीर्थों में रमण कर रहे हैं—व्यापक हैं। हे पतिदेव, यहीं चले आइए, और तीनों लोकों के राजा अर्थात् ईश्वर का ध्यान कीजिए।

१ सबै तीरथनु, धिआओ तिरभुवन। ३ रह्यो, आओ, रूप।

हौं न उरिन पिय सौं भई
सेवा करि इन हाथ
अब हौं पावहुं कौन विधि
सदगति दीनानाथ ॥१९॥२९॥

सद = सद् (शुभ)।

मैं इन हाथों से सेवा न कर सकने के कारण पति-ऋण से मुक्त नहीं हुई। अब हे दीनानाथ भगवान्! मैं किस प्रकार (मृत्यु के अनंतर) अच्छी गति पा सकूँगी?

२ उरिन, पिआ, पावौं। ३ करि, सदगति दीनाथ, पावहुं।

जनम-जनम पिय-पद-पदम
रहै राम अनुराग
पिय बिछुरन होइ न कबहुँ
पावहुँ अचल सुहाग ॥२०॥४४॥

पदम = पद्म । सुहाग = सौभाग्य ।

हे राम, जन्म-जन्मांतर में (मेरे मन में) पति के चरण-कमलों में प्रेम बना रहे । मुझे कभी पति-वियोग (का कष्ट) न हो । और मैं अटल सौभाग्य पाऊँ ।

१ कबहुँ, पावउँ । २ पिय, कबहुँ, पावौं, रहे । ३ कबहुँ, पावहुँ ।

नेह सील गुन वित रहित
कामी हूँ पति होय
रतनावलि भलि नारि हित
पुज्ज देव सम सोय ॥२१॥५१॥

नेह = स्नेह । सील = शील । गुन = गुण । वित = वित्त ।
पुज्ज = पूज्य ।

यदि पति स्नेह, शील, गुण और धन से हीन भी हो, भले ही वह कामी भी हो, रत्नावली कहती है कि भली स्त्री का हित इसी में है कि वह उस पति को देवता के समान पूजे ।

२ होइ, सोइ, पूजिय, हू, होइ, होठ । ३ कामीहू, होइ, पुज्ज, सोइ ।

पितु पति सुत सों पृथक रहि
पाव न तिय कल्यान
रतनावलि पतिता बनति
हरति दोउ कुल मान ॥२२॥१०३॥

"पिता रक्षति कौमारे" इत्यादि। (मनुस्मृति)

पिता से (बचपन में), पति से (यौवन में) और पुत्र से (वृद्धावस्था में) अलग रहकर स्त्री कल्याण नहीं पाती। रत्नावली कहती है कि (शास्त्र के प्रतिकूल आचरण करके) स्त्री पतित हो जाती है, और दोनो कुलों (पति-कुल और पितृ-कुल) की मान-मर्यादा नष्ट कर डालती है।

१ अलग रहि। २ अलग रहि, पावै न तिय कलियान। ३ कुल-कुल पृथक्।

पति सनमुप हँसमुप रहति
कुसल सकल गृह-काज
रतनावलि पति सुपद तिय
धरति जुगल कुल लाज ॥२३॥११७॥

सनमुप = सम्मुख। सुपद = सुखद। तिय = स्त्री। जुगल = युगल। लाज = लज्जा।

रत्नावली कहती है कि जो स्त्री पति के सम्मुख हँसमुख रहती है, और घर के सब कामों में चतुर होती है, वह पति को सुख देनेवाली और (पिता और पति) दोनो के कुलों की लज्जा रख लेती है।

१ सनमुख, हँसमुख। २ हँस, सकलघर काज, तिय। ३ हँसमुप।

जो मन बानी देह सों
पियहिं नाहिं दुप देति
रतनावलि सो साधवी
धनि सुप जग जस लेति ॥२४॥११८॥

बानी=वाणी। दुप=दुःख। साधवी=साध्वी। धनि=धन्य। सुप=सुख। जस=यश।

जो मन, वाणी और शरीर से पति को दुःख नहीं देती, रत्नावली कहती है कि वह भली स्त्री धन्य है! और वही संसार में सुख और कीर्ति प्राप्त करती है।

२ पियहि नोंइ। सो। ३ पियहि।

पति के जीवत निधन हूँ
पति अनरूचत काम
करति न सो जग जस लहति
पावति गति अभिराम ॥२५॥१२५॥

निधन=मृत्यु। अनरूचत=अरुचिकर। अभिराम=सुंदर।

पति के जीवन में और उसकी मृत्यु होने पर भी जो पत्नी उसकी इच्छा के प्रतिकूल कार्य नहीं करती, वही संसार में यश और सुंदर गति प्राप्त करती है।

२ हू, रुचत। ३ हू।

रतनावलि पति सों अलग
कहो न बरत उपास
पति सेवत तिय सकल सुख
पावति सुरपुर - वास ॥२६॥१२६॥

बरत = व्रत । उपास = उपवास ।

रत्नावली कहती है कि स्त्री के लिये पति से पृथक् व्रत और उपवास का शास्त्र में विधान नहीं है । पति-सेवा से ही स्त्री को सब सुखों की प्राप्ति होती है और (मृत्यु के अनंतर) वह देव-लोक में निवास भी पाती है ।

१ बरत, वास । २ सो ।

दीन हीन पति त्यागि निज
करति सुपति परवीन
द्वौ पति नारि कहाय धिक
पावति पद अकुलीन ॥१२७॥१०७॥

परवीन = प्रवीण ।

जो अपने दरिद्र और गुण-हीन पति को छोड़कर (किसी और) सुंदर और चतुर पुरुष को पति बनाती है, वह स्त्री दुपती (दो खसमवाली) कहलाती है । उसे धिक्कार है ! वह उस पद को पाती है, जिसे बुरे कुल में उत्पन्न होनेवाले स्त्री-पुरुष पाते हैं ।

२ तिआगि, पावति कुल अकुलीन ।

धिक सो तिय पर-पति भजति
कहि निदरत जग लोग
बिगरत दोऊ लोक तिहि
पावति विधवा जोग ॥२८॥१०६॥

निदरत = निंदा करत, बुराई करते हैं। जोग = योग।

उस स्त्री को धिक्कार है, जो दूसरे पति की सेवा करती है। संसार में सब लोग (उसका नाम ले-लेकर) उसकी निंदा करते हैं। उसके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं, और अगले जन्म में वैधव्य योग पाती है।

१ भजत, बिगरत। २ तिय, निदरति जग, बिगरति, दोउ। ३ धिक तिय सो बिगरत, तेहि।

जाके कर में कर दयो
मात पिता वा भ्रात
रतनावलि सह वेद विधि
सोइ कह्यो पति जात ॥२९॥११६॥

कह्यो जात = कहलाता है।

रत्नावली कहती है, माता-पिता अथवा भाई ने वेद की बताई हुई विधि के अनुसार जिसके हाथ में कन्या का हाथ सौंप दिया, वही पुरुष उसका पति कहा जाता है।

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमतेः पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्। (मनुः)

२ करमे, कर दयो, भिरात।

पति गति पति वित मीत पनि
पति सुर गुर भरतार
रतनावलि सरवस पतिहि
बंधु बंद्य जगसार ॥२०॥४६॥

वित=वित्त (धन) । मीत=मित्र । भरतार=भर्त्ता (पति) । सरवस=सर्वस्व ।

रत्नावली कहती है, स्त्री के लिये पति ही अंतिम शरण है। 'पति ही धन है, पति ही मित्र है, पति ही देवता है, पति ही गुरु है, पति ही सर्वस्व है। यही बंधु है, पूज्य है, और संसार में सार पदार्थ है।

२ बंधु व दि जग सार, रतनावली । ३ बंधु ।

सुवरन पिय संग हौं लसी
रतनावलि सम काँचु
तिहि बिछुरत रतनावली
रही काँचु अब साँचु ॥२१॥२४॥

सुवरन=सुवर्ण, स्वर्ण ।

मैं रत्नावली काच के समान होती हुई भी सुवर्ण के समान पति के साथ रत्नावली के समान शोभा पाती थी [काच में सुवर्ण के संयोग से पन्ने की-सी कांति आ जाती है], किंतु पति के वियोग में तो वास्तव में काच ही रह गई।

"काच काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकती द्युतिम्।"

१ अब । २ बिछुरत ।

को जाने रत्नावली
पिय वियोग दुप बात
पिय बिछुरन दुप जानतीं
सीय दमैंती मात ॥ ३२ ॥

दमैंती = दमयंती ।

रत्नावली कहती है कि पति के वियोग के दुःख की बात को कौन जानता है ? पति-वियोग के दुःख को तो माता सीता और (महारानी) दमयंती ही जानती हैं ।

१ जानें । २ पिअ बिओग, पिअ, जानती, सीअ दमैती ।
३ × ।

रतनावलि भव-सिंधु मधि
तिय जीवन की नाव
पिय केवट बिनु कौन जग
पेइ किनारे लाव ॥ ३३ ॥

मधि = मध्य । तिय = स्त्री । पेइ = खेइ (खेकर) ।

रत्नावली कहती है कि संसार-रूपी समुद्र के बीच में स्त्री के जीवन की नाव रहती है । पति-रूपी मल्लाह के बिना ऐसा जगत् में कौन है, जो उस नाव को खेकर किनारे तक ले आवे ।

१ खेइ । २ रतनावली, तिअ, पिअ, बिंदु, तिअ, पिअ ।
३ × ।

रतनावलि सुप वचन हूँ
इक सुप दुप को मूल
सुप सरसावत वचन मधु
कटु उपजावत सूल ॥ ३४ ॥

सुप=सुख। मधु=शहद, अर्थात् मीठा, मधुर। सूल=शूल (काँटा=दर्द)।

रत्नावली कहती है कि मुख से निकला हुआ वचन भी एक सुख दु:ख का देनेवाला है। मीठी बात सुख देती है, और कड़वी बात दु:खदायक होती है।

१ मुख वचन हो सुख, दुःख। २ सुपवचन हो। ३ सुपवचन हूँ।

मधुर असन जनि देउ कोउ
बोलौ मधुरे बैन
मधु भोजन छिन देत सुप
बैन जनम भरि चैन ॥ ३५ ॥

असन=अशन=भोजन। जनि=मत। बैन=वचन=बात। छिन=क्षण। जनम=जन्म। चैन=सुख।

कोई भले ही मीठा भोजन न दे, किंतु मीठे वचन तो बोले ही। मीठा भोजन थोड़ी देर का सुख देता है, किंतु मीठी बोली जन्म-पर्यंत आनंद देती है।

१ व=ब। प=ख। २ बोलौं। ३ बोलो।

रतनावलि काँटो लग्यो
वैदनु दयो निकारि
वचन लग्यो निकस्यौ न कहु
उन डारो हिय फारि ॥ ३६ ॥

रत्नावली कहती है कि शरीर में लगे हुए काँटे को तो डॉक्टर-वैद्य निकाल देते हैं, किंतु जो बात हृदय में लग जाती है, वह कहीं नहीं निकल सकती, चाहे वे हृदय को चीर-फाड़ ही क्यों न डालें।

१ निकसो। २ वेदनु दश्रो, हिअ फारि, हिअ। ३ ×।

बारी पितु आधीन रहि
जौवन पति आधीन
बिनु पति सुत आधीन रहि
पतित होति स्वाधीन ॥ ३७ ॥

जौवन = यौवन। पतित = भ्रष्ट। स्वाधीन = स्वैरिणी, खुद-मुख्तार।

बचपन में स्त्री को पिता के अधीन रहना चाहिए, और यौवन में पति के अधीन। (यौवन में) पति के और (वृद्धावस्था में) पुत्र के शासन में बिना रहे स्त्री स्वाधीन रहकर पतित हो जाती है।

१ व = ब। २ जोवन, होत सुआधीन। ३ बारी।

उद्यापन तीरथ वरत
जोग जग्य जप दान
रतनावलि पति सेव बिन
सवहि अकारथ जान ॥३८॥

तीरथ = तीर्थ । वरत = व्रत । अकारथ = अकार्यार्थ = व्यर्थ । सेव = सेवा ।

रत्नावली कहती है कि पति की सेवा के बिना तीर्थ-यात्रा, व्रत रखना, व्रतों का उद्यापन करना, योगाभ्यास करना, यज्ञ करना, जप करना, दान देना, सभी निरर्थक समझो ।

१ व = ब । २ उदिम्यापन, विरत, जगि, सवै । ३ सेव, बिन, सबहि ।

रतनावलि न दुखाइये
करि निज पति अपमान
अपमानित पति के भये
अपमानित भगवान ॥ ३९ ॥

अपमान = निरादर ।

रत्नावली कहती है कि अपने पति का अपमान करके (उसके चित्त को) मत दुखाओ । पति का अपमान करने से (पति-सेवा की मर्यादा को शास्त्रों द्वारा प्रकट करनेवाले) ईश्वर का अपमान होता है ।

१ दुखाइए भयें । २ दुखाइऐ भऐ । ३ भएं ।

सात पैग जा संग भरे
ता संग कीजै प्रीति
सब विधि ताहि निवाहिये
रतन वेद की रीति ॥ ४० ॥

निवाहिए=निर्वाह कीजिए।

जिसके साथ (विवाह के समय सप्तपदी-नामक विधि को करते हुए) सात कदम चली थीं, उस पति के साथ प्रेम करो। रत्नावली कहती है कि इस वेद की रीति को सभी तरह से निबाहना चाहिए।

१ निवाहिए सँग, सँग। २ भरे, निभाहए। ३ ×।

जाने निज तन मन दयो
ताहि न दीजै पीठि
रतनावलि तापै रषहु
सदा प्रीति की दीठि ॥ ४१ ॥

पीठि=पृष्ठ=कमर। रषहु=रक्ष=रक्खो। दीठि=दृष्टि=निगाह।

जिसने तुम्हें अपना शरीर और मन दिया है, उसे पीठ मत दो, अर्थात् उनसे विमुख मत होओ। रत्नावली कहती है कि उस पर सदा प्रेम की दृष्टि रक्खो।

१ प्रेम रखहु। २ दओ, पीठी, रषौ। ३ रषहु, प्रेम की दीठि।

विनु पति पति जग पति सुमिरि
साक मूल फल पाइ ।
विरमचरज व्रत धारि तिय
जीवन रतन बनाइ ॥ ४२ ॥

पति=(१) भर्ता, (२) मान-मर्यादा । विरमचरज=ब्रह्मचर्य=अष्टविध मैथुन-त्याग ।

बिना पति की अर्थात् विधवा स्त्री को चाहिए कि जगत् में अपने (मृत) पति की मर्यादा का—सम्मान का—स्मरण करके अमूल्य भोजन (जैसे साग, फल-मूल) खावे । ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके उस स्त्री को चाहिए कि अपने जीवन को रत्न (के समान उज्ज्वल) बना ले । अथवा रत्नावली कहती है कि ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके वह अपना जीवन सुधार ले ।

१ प=व खाइ । २ साग, विरत, तिय । ३ विरमचर्ज ।

जुवक जनक जामात सुत
ससुर दिवर अरु भ्रात
इनहुं की एकांत बहु
कामिनि सुनि जनि बात ॥ ४३ ॥

जुवक=युवक=जवान । ससुर=श्वसुर । कामिनि=कामिनी=स्त्री । बात=वार्ता । जामात=जमाई ।

स्त्री को चाहिए कि वह पूर्ण एकांत में जवान पिता, जमाई, बेटे, ससुर, देवर और भाई की भी अधिक बातें न सुने । अकेले में इनके साथ भी बैठकर बहुत बातें नहीं करनी चाहिए ।

१ व=व इन हूँ । २ भिरात, हूँ, सुनि जिन बात । ३ इनहूँ, बहु कामिनि सुनि बात ।

घी को घट है कामिनी
पुरुष तपत अंगार
रतनावलि घी अगिनि को
उचित न संग विचार ॥ ४४ ॥

तपत = तप्त = प्रज्वलित। अगिनि = अग्नि।

स्त्री तो घी के भरे हुए घड़े के समान है, और पुरुष जलते हुए अंगारे के समान। रत्नावली कहती है कि घी और अग्नि का संग अच्छी बात नहीं।

जिस प्रकार घृत के साहचर्य से अग्नि शांत न होकर और बढ़ती ही है, इसी प्रकार स्त्री के साहचर्य से पुरुष के काम में भी वृद्धि ही होती है, अतएव स्त्री-पुरुष का सहवास कामोद्दीपक होने के कारण त्याज्य है। कहना न होगा कि यह त्याग पुरुष के जिम्मे पर-स्त्री का है, और स्त्री के लिये पर-पुरुष का है।

१ अगिन अंगार, विचार। २ घट है। ३ पुरुस।

चिनगारि हु रतनावली
तूलहिं देति जराय
लघु कुसंग तिमि नारि को
पतिव्रत देत डिगाय ॥४५॥

तूल = रुई।

रत्नावली कहती है कि अग्नि (अपने बड़े रूप में ही नहीं, अपितु) चिनगारी के रूप में भी रुई (की राशि) को जला डालती है। इसी प्रकार थोड़ी मात्रा में भी कुसंग स्त्री का पातिव्रत्य भ्रष्ट कर देता है।

१ तूलहिं। २ तूलहि देति जराई, पतिविरत देत डिगाई। ३ तूलहि, जिमि नारिको।

धरम सदन संतति चरित
कुल कीरति कुल रीति
सबहि बिगारति नारि इक
करि पर नर सों प्रीति ॥४६॥

धरम=धर्म। कीरति=कीर्ति।

पराए पुरुष से प्रेम करके स्त्री अकेली ही धर्म, घर, पुत्र-कन्या, चरित्र, यश, वंश और कुल की रीति, इन सबको ही बिगाड़ देती है।

१ बिगारत। २ नरसों। ३ ×।

जो व्यभिचार विचार उर
रतन धरै तिय सोय
कोटि कलप बसि नरक पुनि
जनमि कूकरी होय ॥४७॥

कूकरी=कुक्कुरी=कुतिया। कलप=कल्प=ब्रह्माजी का एक दिन, एक सहस्र युग। नरक=सात प्रधान हैं। उर=हृदय।

जो स्त्री अपने हृदय में पराए पुरुष से समागम का संकल्प करती है, वह करोड़ों कल्पों तक नरक में निवास करके फिर इस धरा-धाम पर कुतिया बनकर आती है।

१ बिभिचार। २ सोई, जनमि कुकरी होई। ३ ×।

सत संगति उपवास जप
तप मष जोग विवेक
पति सेवा मन बच करम
रतनावलि उर एक ॥ ४८ ॥

मष = (मख) यज्ञ। जोग = योग। करम = कर्म = करना। विवेक = ज्ञान।

रत्नावली कहती है कि मेरे हृदय में स्त्री के लिये मन, वाणी और कर्म द्वारा एक (केवल) पति की सेवा करना ही सत्संग, उपवास, जप, तप, यज्ञ, योगाभ्यास और ज्ञान है।

१ मख। २ उपवास जोगु, विवेकु, पतीसेवा, रतनावली उर ऐकु। ३ ×।

उदरपाक करपाक तिय
रतनावलि गुन दोय
सील सनेह समेत तौ
सुरभित सुबरन सोय ॥ ४६॥

उदरपाक = उत्तम संतान की जन्मदात्री होना अथवा भूख लगने पर ही भोजन करना, जिह्वा के स्वाद के लिये समय-कुसमय खाते रहने से बचना। करपाक = आलस्य त्यागकर चौके मे स्वयं उत्तम पाक (रसोई) करना, तथा सीना-काढ़ना आदि। सील = शील = सभी सद्गुण। सनेह = नेह। सुबरन = सुवर्ण।

रत्नावली कहती है कि स्त्री में यदि 'उदरपाक' और 'करपाक'-

नामक दोनो गुण शील और स्नेह के साथ हों, तो सोने में सुगंध का-सा योग होता है।

१ सुवरन होय। २ तिय, दोइ, सुवरन होई। ३ रतनावली।

जे तिय पति हित आचरहिं
रहि पति चित अनुकूल
लपहिं न सपनेहुँ पर पुरुप
ते तारहि दोउ कूल ॥ ५० ॥

चित = चित्त। लपहिं = देखती हैं। सपनि = स्वप्ने = सपने में। कूल = कुल = खानदान, वंश।

वे स्त्रियाँ दोनो कुलों अर्थात् पिता और पति के कुलों का उद्धार करती हैं, जो पति की भलाई करती हैं, उसके मन के अनुकूल रहती हैं, और स्वप्न में भी पराए पुरुष को (काम दृष्टि से) नहीं देखतीं।

१ × । लखहिं सपनिहुँ। २ तिय, आचरै, रह, अनुकूल, लपै, सपनिड, ते तारैं दोउ कूल। ३ सपनेहुँ। पुरुष।

सुवरनमय रतनावली
मनि मुकता हारादि
एक लाज बिनु नारि कहँ
सब भूपन जग बादि ॥ ५१ ॥

सुवरन = सुवर्ण = स्वर्ण = सोना। मनि = मणि = रत्न। लाज = लज्जा। नारि = नारी। भूपन = भूषण। बादि = व्यर्थ।

धनि तिय सो रतनावली
पति संग दाहैं देह
जौं लौं पति जीवत जियै
मरत मरैं पति नेह ॥ ५३ ॥

धनि=धन्य । नेह=स्नेह=प्रेम । दाहै=दहति=जलाती है । सो=सा=यह । जीवत=जीवति=ज़िंदा है । जियै=जीवेत्=ज़िंदा रहे । मरत=मृते=मरने पर ।

रत्नावली कहती है कि वह स्त्री धन्य है, जो पति की मृत्यु हो जाने पर उसके शरीर के साथ ही अपना शरीर भी भस्म कर देती है । जब तक पति जीवित रहे, तभी तक स्वयं जीवित रहती और उसके मरने पर पति-स्नेह के कारण स्वयं भी मर जाती है ।

१ सँगदाहै जिये, मरै । २ तिय, दाहे, जो लो, जिए, मरै । ३ जियैं ।

पति के सुप सुप मानती
पति दुप देषि दुपाति
रतनावलि धनि द्वैत तजि
तिय पिय रूप लपाति ॥ ५४ ॥

सुप=सुख । दुख=दुःख । पिय=प्रिय । दुपाति=दुःखायते=दुखी होती है । लपाति=देखती है ॥ मानती=मन्यते=मानती है । देषि=(सं)दृश्य । तजि=(सं) त्यज्य ।

रत्नावली कहती है कि पति के सुख में अपना सुख माननेवाली, उसके दुख को देखकर दु:खित होनेवाली, पति और अपने में मैं-तू का भेद (पार्थक्य) अथवा अपने तन-मन का ममत्व त्यागकर पति के तन मन को अपना जानती हुई स्वय पति रूप (पति के मनोऽनुकूल वृत्ति धारण करनेवाली) हो जाती है । वह स्त्री धन्य है ।

१ प=ख । २ द्वैत, तिय, पिय, रूपन ३ रूप ।

जननि जनक भ्राता बड़ो
होइ जु निज भरतार
पढ़इ नारि इन चारि सों
रतन नारि हित सार ॥ ५५॥

जननि=जननी। भरतार=भर्ता। पढ़इ=पठति=पढ़ती है। होइ=भवति=होता है।

रत्नावली कहती है कि स्त्री की भलाई का तत्त्व इसी में है कि वह इन चारों से शिक्षा प्राप्त करे—

१ माता, २ पिता, ३ बड़ा भाई, ४ अपना पति।

[छोटे भाई की योग्यता अपने से संभवतः न्यून होने के कारण उसका उल्लेख नहीं किया है।]

१ बड़ो, पढ़ै। २ भ्राता, होई, पढ़ै, सो। ३ ×।

क्रूर कुटिल रोगी ऋनी
दरिद मंदमति नाह
पाइ न मन अनपाइ तिय
सती करति निरवाह ॥ ५६ ॥

क्रूर=क्रूर। ऋनी=ऋणी। दरिद=दरिद्र। नाह=नाथ=पति। निरवाह=निर्वाह। करति=करोति=करती है। पाइ=प्राप्य=पाकर।

पतिव्रता स्त्री क्रूर, बुरे स्वभाववाला, बीमार, क़र्ज़दार, ग़रीब और मूर्ख पति को भी पाकर अपने चित्त में बुरा नहीं मानती, बल्कि (उसी के साथ प्रेम-पूर्वक) गुज़ारा करती है।

१ ध=ख। २ रिनी, अनुपाइ तिअ। ३ ×।

छनहुँ न करि रतनावली
कुलटा तिय को संग
तनक सुधा कर संग सों
पलटति रजनी रंग ॥ ५७ ॥

करि=कुरु=कर । छन=क्षण । सुधा=चूना । लखहु=देखो । पलटति=बदलती है । रजनी=हल्दी । पलटति (पलाटति परा उपसर्ग पूर्वक अट् धातु)

रत्नावली उपदेश देती हैं कि बुरे आचरणवाली स्त्री का संग थोड़ी देर के लिये भी मत करो । ज़रा से चूने के मिलने से ही, देखो, हल्दी अपने (पीले) रंग को बदल देती है ।

१ छनहु, तनक सुधा सन सों लखहु । २ तनक सुधा संग सों लखौ । ३ × ।

रतनावलि जिय जानि तिय
पतिव्रत सकति महान
मृत पति हू जीवित करयो
सावित्री सतिवान ॥ ५८ ॥

सकति=शक्ति=सामर्थ्य । सतवान=सत्यवान ।

जानि=जानी यात् } जाने । जानीहि } जान । करयो=अकरोत्=किया ।

रत्नावली कहती है कि स्त्री को अपने मन में पातिव्रत्य की शक्ति को बहुत बड़ा समझना चाहिए । सावित्री ने (इसी शक्ति से) अपने मृत पति सत्यवान को जीवित कर लिया था ।

१ × । २ रतनावलो, जिअ, तिअ, पतिब्रिरत, महानु, सतिवानु । सावितरी । ३ × ।

रतनावलि उपभोग सों
होत विषय नहिं सांत
ज्यों ज्यों हवि होमें अनल
त्यों त्यों बढ़त नितांत ॥ ५६ ॥

बढ़त = वर्धते । सांत = शांत । हवि = घृत - शाकल्य । अनल = अग्नि । नितांत = बहुत । होत = भवति ।

रत्नावली कहती है कि विषयों को भोगने से वे शांत नहीं होते। जिस प्रकार अग्नि में आहुति डालने से वह और बढ़ती है, इसी प्रकार विषयाग्नि भी भोगों की आहुति से बहुत अधिक बढ़ती है।

न जातु कामः कामानामुपभोगात्प्रशाम्यति ;
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ।
(मनुस्मृति)

१ सांत, नितांत । २ रतनावली उपभोग सो होत विषय नहिं सांत, होमे नितांत । ३ विषय, नितांत, सांत ।

जो तिय संतति लोभ बस
करति अपर नर भोग
रतनावलि नरकहिं परति
जग निंदरत सब लोग ॥ ६० ॥

संतति = संतान । अपर = पराया । निंदरत = निंदा करते हैं । करति = करोति ।

रत्नावली कहती है कि जो स्त्री संतान के लालच के वश में

होकर पराए पुरुष से संभोग करती है, वह नरक में पड़ती है, और सब आदमी उसकी निंदा करते हैं।

१ ×। २ तिय भोगु, रतनावली नरक, लोगु। ३ अ—निदरत, नरकहि।

तन मन पति सेवा निरत
हुलसे पति लपि जोय
इक पति कह पूरुष गनै
सतीसिरोमनि सोय ॥ ६१ ॥

हुलसै=हृद्युल्लसति=मन में प्रसन्न होती है। गनै=गणयति=गिनती है, मानती है। शिरोमनि=शिरोमणि।

वही स्त्री पतिव्रताओं में श्रेष्ठ है, जो शरीर और मन से अपने पति की सेवा में लगी रहती है, जो उसे देखकर प्रसन्न होती है, और जो एकमात्र पति को ही पुरुष मानती है।

१ हुलसै, लखि, कहँ, पूरुष गुनै, कहं। २ जोइ, इक पति को पूरुष गिनै। ३ कहं पूरुष।

पति पितु जननी बंधु हितु
कुटुम परोसि बिचारि
जथाजोग आदर करै
सो कुलवंती नारि ॥ ६२ ॥

कुटुम=कुटुंब। बिचारि=विचार्य=विचारकर। जथाजोग=यथायोग्य=योग्यता के अनुसार। करै=कुरुते=करती है। कुलवंती=कुलवती=कुलीन। नारि=नारी=स्त्री।

वही स्त्री कुलीन है, जो पति, पिता, माता, भाई, मित्र (सखी), कुटुंब और पड़ोसी का विचार-पूर्वक यथायोग्य आदर करती है।

१ कुलवंती करै। २ करै। ३ करहि।

तीरथ न्हान उपास व्रत
सुर सेवा जपदान
स्वामि विमुप रतनावली
निसफल सकल प्रमान ॥ ६३ ॥

तीरथ=तीर्थ । न्हान=स्नान । उपास=उपवास । स्वामि=स्वामी । विमुप=विमुख । निपफल=निष्फल । प्रमान=प्रमाण ।

रत्नावली कहती है कि पति के प्रतिकूल होकर किए हुए तीर्थ-यात्रा, गंगादि पवित्र नदियों में स्नान, एकादशी आदि तिथियों में उपवास, जन्माष्टमी आदि व्रत, देव-पूजा, भगवन्नाम का जप, अन्न-जल आदि के दान व्यर्थ होते हैं, इसमें सभी (वेद-शास्त्र) प्रमाण हैं ।

१ निपफल । २ निरत, निसफल, प्रिरमान । ३ × ।

चतुर बरन को विप्र गुरु
अतिथि सवन गुरु जानि
रतनावलि तिमि नारि को
पति गुरु कह्यो प्रमानि ॥ ६४ ॥

चतुर=चतुर्=चार । बरन=वर्ण=जाति । जानि=जानीहि=जानो, समझो । कह्यो=अकथ्यत=कहा गया । प्रमानि=प्रमाण्य=मानकर ।

(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र)- नामक चारो जातियों का गुरु विप्र होता है । अतिथि सभी का गुरु होता है । रत्नावली कहती है कि उसी प्रकार स्त्री का गुरु पति ही प्रमाण-रूप से कहा गया है ।

१ व=ब । २ अतिथी, जान, प्रिरमान । ३ बरन कह, गुरु, जिमि नारि कहुँ ।

कन्यादान विभाग अरु
वचनदान जे तीन
रतनावलि इक बार ही
करत साधु परवीन ॥ ६५ ॥

तीन = त्रीणि । करत = कुर्वते । परवीन = प्रवीण ।

रत्नावली कहती है कि कन्या का दान, दाय का विभाग और वचन का दान, इन तीनों बातों को चतुर सज्जन एक ही बार करते हैं। (इससे सिद्ध होता है कि विधवा का विवाह नहीं होना चाहिए।)

सकृत् कन्या प्रदीयते ।

१ न=व । २ इक बारह । ३ अरु ।

दुष्ट नारि तिमि मीत सठ
ऊतर दैनो दास
रतनावलि अहिवास घर
अंत काल जनु पास ॥ ६६ ॥

मीत = मित्र । सठ = शठ । पास = पार्श्व । घर = गृह ।

पत्नी का दुश्चरित्र होना, मित्र का कपटी होना, सेवक का जवाब देना और घर में साँप का रहना, ये चारो बातें ऐसी हैं, मानो मृत्यु निकट आ रही है।

१ दैनों । २ दुष्ट, उतर देनो, रतनावली । ३ दैनो ।

धन सुप जन सुप बंधु सुप
सुत सुप सवहिं सराहिं
पै रतनावलि सकल सुप
पिय सुप पटतर नाहिं ॥ ६७ ॥

सुप=सुख । सराहिं=सराहना करते हैं । पै=परम् । पटतर=पटुतर=बराबरी । नाहिं=न-हि ।

सभी लोग धन, जन, बंधु, पुत्र के सुख की प्रशंसा करते हैं, किंतु रत्नावली कहती है कि (स्त्री के लिये) ये सारे सुख पति-सुख के समान नहीं हो सकते ।

१ ब=व । २ सबै, पै रतनावली, पिय । ३ × ।

आपन मन रतनावली
पिय मन महँ करि लीन
सतीसिरोमनि होइ धनि
जस आसन आसीन ॥ ६८ ॥

जस=यश । आसीन=बैठा हुआ ।

रत्नावली कहती है कि जो स्त्री अपने मन को पति के मन में लीन कर देती है, अर्थात् पति के मन के अनुकूल चिंतन करती है, वही पतिव्रताओं की शिरोमणि धन्य है, और यशोमय आसन पर विराजमान होती है, अर्थात् बड़ी कीर्ति पाती है ।

१ में । २ पिय, मनमे । ३ आपनु ।

मात पिता सासु ससुर
ननद नाथ कटु बैन
भेषज सम रतनावली
पचत करत तनु चैन ॥ ६९ ॥

ननद् नान्द । पचत=पचति=पचने पर । चैन=सुख ।

रत्नावली कहती है कि माता-पिता, सास-ससुर, नंद (ननद) और पति के कड़वे वचन (वैद्य की दी हुई कड़वी) दवाई के समान परिणाम में हितकारक होते हैं ।

१ × । २ नान्द, चैन । ३ सासुहु ।

तन मन अन भाजन बसन
भोजनभवन पुनीत
जो राषति रतनावली
तेहि गावत सुर गीत ॥ ७० ॥

अन=अन्न=भोजन । भोजनभवन=पाकशाला, रसोईघर । राखति=रखति । गावति=गायंति ।

रत्नावली कहती है कि जो स्त्री अपने शरीर, मन, भोजन-सामग्री, पात्र, वस्त्र और रसोईघर को पवित्र रखती है, उसकी (प्रशंसा के) गीतों को देवता गाते हैं ।

१ राखति । २ तिहि । ३ × ।

धन जोरति मितव्यय धरति
घर की वस्तु सुधारि
सूप करम आचार कुल
पति रत रतन सुनारि ॥ ७१ ॥

धरति=(धरति) रखती है। सुधारि=(सुधार्य) सुधारकर।

सूप करम { (शूर्प कर्म)=फटकना।
(सूप कर्म)=रसोई बनाना।

वही स्त्री नारियों में रत्न के समान है, जो कम ख़र्च करती और धन जोड़ती है, घर की वस्तुओं को सुधारकर रखती है, नाज फटकती है, भोजन बनाती है, कुल के आचार का पालन करती है, और पति की सेवा करती है।

१ ×। २ घर की वस्तु संभारि, सूपकरम। ३ ×।

मदक पान पर घर वसन
भ्रमन सयन बिनु काल
पृथक वास पति दुष्ट सँग
षट तिय दूषन जाल ॥ ७२ ॥

मदक=(मादक) नशे की चीज़। भ्रमन=(भ्रमण) घूमना। पृथक (पृथक्)=अलग। बिनु=(बिना) बग़ैर। षट (षट्)=छः। दूषन=(दूषण) बुराई। सयन=(शयन) सोना।

स्त्री के लिये दोषों का जाल छः प्रकार का है—१ शराब पीना, २ पराए घर में रहना, ३ निरर्थक घूमना, ४ बिना समय सोना, ५ पति से अलग रहना और ६ बुरी संगत करना।

१ प=ष। २ भ्रमन, प्रिथक, दुसट, तिय। ३ बसन, सयन।

रतनावलि पति छाँड़ि इक
जेते नर जग माहि
पिता भ्रात सुत सम लपहु
दीरघ सम लघु आहि ॥ ७३ ॥

जेते=(यावन्तः) जितने । माँहि=(मध्ये) में । लपत=देखो । दीरघ=(दीर्घ) बड़ा । आहिं=(सन्ति) हैं ।

रत्नावली उपदेश देती है कि हे स्त्रियो ! एक विवाहित पति को छोड़कर और जितने भी पुरुष संसार में हैं, उनमें से बड़ों को पिता के समान, बराबरवालों को भाई के समान और छोटों को पुत्र के समान देखो ।

१ × । २ जगमाइ, भ्रात, लपौ, लघुभाइ । ३ माहि, आहिं ।

सासु जिठानी जननि सम
ननदहि भगिनि समान
रतनावलि निज सुत सरिस
देवर करहु प्रमान ॥ ७४ ॥

सासु (श्वश्रूः)=सास । जिठानि (ज्येष्ठा)=जिठानी । जननि (जननी)=माता । भगिनि (भगिनी)=बहिन । सरिस (सदृश)=समान । प्रमान (प्रमाण)=सबूत । करहु (कुरु)=करो ।

रत्नावली कहती है कि सास और जिठानी को माता के समान, ननद को बहिन के समान और देवर को अपने पुत्र के समान देखो ।

१ जिठानिहि । २ जिठानीहि, करौ प्रमान । ३ जिठानिहि ।

बनिक फेरुआ भिच्छुकन
जनि कबहूँ पतिआइ
रतनावलि जेइ रूप धरि
ठगजन ठगत भ्रमाइ ॥ ७५ ॥

बनिक (वणिक्) = बनिया । भिच्छुक (भिक्षुक) = भिखारी । भ्रमाइ (भ्रमन्ति) = घूमते हैं ।

रत्नावली कहती है कि बनिए, फेरी लगानेवाले और भिखारियों का कभी विश्वास न करो, क्योंकि ठग लोग उक्त वेष धारण कर, भ्रम में डालकर (धोखा देकर) ठग ले जाते हैं ।

१ × । २ कबउ, भिरमाइ । ३ फेरुवा, कबहू, रूप ।

ऊपर सौं हरि लेत मन
गाँठि कपट उर माहि
बेर सरिस रतनावली
बहु नर नारि लखाहिं ॥ ७६ ॥

गाँठि (ग्रंथि) = गाँठ । बेर (बदरी) । लखहिं (लक्ष्यन्ते) = दिखाई देते हैं ।

रत्नावली कहती है कि ऐसे बहुत-से स्त्री-पुरुष दिखाई देते हैं, जो बेर के समान हैं, क्योंकि ऊपर से तो चिकनी-चुपड़ी बात बनाकर मन हर लेते हैं, और हृदय में कपट की गाँठ लगी रहती है ।

१ × बहवो बदराकारा बहिरेव मनोहराः । २ ऊपरसौं, माइं ।
३ बहु, लखाइ ।

उर सनेह कोमल अमल
ऊपर लगें कठोर
नरियर सम रतनावली
दीसहिं सज्जन थोर ॥ ७७ ॥

नरियर (नारिकेल)=नारियल । दीसहिं (दृश्यन्ते)= दिखाई देते हैं।

रत्नावली कहती है कि ऐसे सज्जन थोड़े ही हैं, जो नारियल के समान होते हैं, जो ऊपर से देखने में कठोर प्रतीत हों, किन्तु जिनके निर्मल, कोमल हृदय में प्रेम हो।

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते केऽपि सज्जनाः ।

१ × । २ दीपे साजन । ३ × थोर ।

भीतर बाहर एक से
हितकर मधुर सुहायँ
रतनावलि फल दाप से
जन कहुँ कोउ लपायँ ॥ ७८ ॥

बाहर (बहिर्) । सुहाय (शोभायते)=अच्छा लगता है । दाप (द्राक्षा)=अंगूर । लपाय (लक्ष्यते)=दिखाई देता है ।

रत्नावली कहती है कि अंगूर की तरह का मनुष्य तो कहीं कोई एक दिखाई देता है, जो भीतर-बाहर अर्थात् ऊपर से भी और हृदय से भी हित करनेवाला मधुर और शोभायमान होता है ।

१ बाहिर, सुहायं, कहुं, लपायं । २ बहीर, सुहाइं, लपाइं, ऐसेइ । ३ बाहिर, सुहाय, कहूं, लपायं ।

रतनावलि छनहूँ जियै
धरि परहित जस ग्यान
सोई जन जीवत गनहुँ
अनि जीवत मृत मान ॥ ७९ ॥

जस (यश)=कीर्ति । ग्यान (ज्ञान)=ज्ञान । गनहु (गणय)=समझो । अनि (अन्य)=दूसरा । जीवत (जीवन्तम्)=जीते हुए को । मान (मन्यस्व)=मानो ।

रत्नावली कहती है कि उसी मनुष्य को जीवित समझो, जो परोपकार, यश और ज्ञान को हृदय में धारण करके थोड़े दिन भी जिए । इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से जीते हुए मनुष्य को मरा हुआ ही समझो ।

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशोभिरभज्यमानम् ;
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते ।

१ गनहु । २ छिन, मत । ३ छनहूँ ।

रतनावलि धरमहिं रखत
ताहि रखावत धर्म
धरमहिं पातति सो पतति
जेहि धरम को मर्म ॥ ८० ॥

धरम (धर्म)=धर्म । रखत (रक्षति)=रखता है । पातत (पातयति)=गिराता है । पतत (पतति)=गिरता है । रखावत (रक्षयति)=रक्षा कराता है । जेहि=यही ।

रत्नावली कहती है कि जो धर्म की रक्षा करते हैं, उनकी रक्षा धर्म करता है । जो धर्म को गिराता है, वह स्वयं नीचे गिरता है । यही धर्म का रहस्य है ।

धर्म एव हतो हन्ति,
धर्मो रक्षति रक्षित ।

१ प.तत पतत । २ धरम मरम । ३ × ।

विष अपजस पीऊष जस
रतनावली निहारि
जियत मरें लहि मृत जिएँ
विष तजि अमिरत धारि ॥८१॥

अपजस(अपयशस्)=बदनामी । पीऊष (पीयूष)=अमृत । लहि (संलभ्य)=पाकर । तजि (संत्यज्य)=छोड़कर । अमिरत (अमृतम्)=सुधा, अमृत । धारि (धारय)=धारण करो ।

रत्नावली कहती है कि बदनामी तो जहर के समान है, और कीर्ति अमृत के समान । बदनामी होने से मनुष्य जीता हुआ ही मरे के समान है, और कीर्तिमान् पुरुष मरा हुआ भी जीवित के समान है । (अतएव हे स्त्रियो) अपकीर्ति रूपी हलाहल का त्यागकर कीर्ति रूपी सुधा को धारण करो ।

१ × । २ मोहदि, मित, अमित, जिमत । ३ विष, पीऊम ।

उदय भाग रवि मीत बहु
छाया बडी लपाति
अस्त भए निज मीत कह
तनु छाया तजि जाति ॥ ८२ ॥

भाग { (भाग.)=हिस्सा । (भाग्यम्)=किस्मत ।

मीत { (मित्रः)=सूर्य । (मित्रम्)=दोस्त ।

लपाति (लक्ष्यते)=दिखाई देती है। छाया (छाया)=१ कांति, २ परछाई ।

भाग्य-रूपी सूर्य के उदय होने पर बहुत-से मित्र और बहुत-से छाया (रक्षा) करनेवाले हो जाते हैं, और भाग्य-सूर्य जब अस्त होता है, तब न मित्र रहते हैं, और न छाया करनेवाले ही। जैसे सूर्य के उदय होने पर अपने शरीर की बड़ी छाया (परछाईं) दिखाई पड़ती है, और सूर्य के अस्त होने पर वही अपने शरीर की (साथ रहनेवाली) छाया अपने साथ नहीं रहती।

१ भयें, कहं। २ ×। ३ भएँ, कहं।

दान भोग अरु नास जे
रतन सु धनगति तीन
देत न भोगत तासु धन
होत नास में लीन ॥ ८३ ॥

नास (नाश)। रतन(रत्नावली)। तीन (त्रीणि)=तीन। देत (ददते)=देता है। भोगत (भुंक्ते)=खाता है। तासु (तस्य)=उसका। होत (भवति)=होता है।

रत्नावली कहती है कि धन की तीन दशाएँ होती हैं—१ दान, २ भोग और ३ नाश। जो व्यक्ति अपने धन को न तो दान देता है, और न अपने ही काम में लाता है, उसका धन नष्ट ही हो जाता है।

१ ×। २ ×। ३ अरु, नासमइ।

तरुनाई धन देह बल
बहु दोषनु आगार
बिनु बिवेक रतनावली
पसु सम करत बिचार ॥ ८४ ॥

तरुनाई (तारुण्यम्)=यौवन। पसु (पशु-)=ढोर। करत

(कुरुते) = करता है । विचार (वि×चर्×घञ् = विचारः) विचरण ।

जवानी, रुपया, सुंदर शरीर और ताक़त, ये अनेक बुराइयों के घर हैं। रत्नावली कहती है कि ज्ञान (का उदय हुए) बिना मनुष्य पशु के समान विचरण करता है।

१ स = ष । २× ।

पांच तुरग तनु रथ जुरे
चपल कुपथ लै जात
रतनावलि मन सारथि हि
रोकि रुकें उतपात ॥ ८५ ॥

तुरग (तुरगः) = घोड़ा। उतपात (उत्पातः) = उपद्रव। पाँच इंद्रियाँ — श्रोत्र (कान) । त्वक् (खाल) । चक्षु (आँख) । जिह्वा (जीभ) । घ्राण (नाक) ।

रत्नावली कहती है कि इस शरीर-रूपी रथ में पाँच इंद्रिय-रूपी चंचल घोड़े जुते हुए हैं, और वे उसे बुरे मार्ग पर ले जाते हैं। मन-रूपी सारथी के रोकने से ही उनके उपद्रव रुक जाते हैं।

१ पांन । २ । × । ३ रुकें ।

रतन न पर दूषन उगटि
आपन दोष निवारि
तोहि लखें निरदोष वे
दें निज दोष बिसारि ॥ ८६ ॥

दूषन (दूषणम्) = बुराई । उगटि (उद्घाटय) = खोलकर । निवारि (निवार्य) = हटाकर। निरदोष (निर्दोषः) = दोष-हीन। बिसारि दें (विसारयेयुः) भुला दें, त्याग दें।

रत्नावली कहती है कि तू औरों के दोषों (बुराइयों) को प्रकट न करके अपने दोषों को दूर कर, वे जब तुझको (उदाहरण-स्वरूप) निर्दोष देखेंगे, तो वे भी अपने दोषों को त्याग देंगे।

१ ×। २ ×। ३ आपनु, लघहिं।

करहु दुपी जनि काहु को
निदरहु काहु न कोय
को जाने रतनावली
आपनि का गति होय ॥ ८७ ॥

करहु (कुरुष्व) = करो। दुपी (दु:खी) = दुखी। को (क:) = कौन। जाने (जानीते) = जानता है। का (का) कौन-क्या।

रत्नावली कहती है कि कभी किसी को दुखी मत करो, और न किसी का निरादर ही करो, कौन जानता है कि (भविष्य में) (मेरी) अपनी दशा कैसी होगी।

१ कों। २ काहुकों। ३ कोइ, होइ।

घर घर घूमनि नारि सों
रतनावलि मित बोलि
इन सों प्रीति न जोरि बहु
जनि गृह भेदनु पोलि ॥ ८८ ॥

मित (मित) = थोड़ा। बोलि = बोल। जनि = मत। भेदनु = रहस्य। पोलि = खोल।

घर घर घूमनेवाली स्त्री से रत्नावली कहती है कि थोड़ा ही बोलो। ऐसी स्त्रियों से बहुत मायला मत जोड़ो, और अपने घर की गुप्त बातों को मत खोलो।

१ ×। २ गृह। ३ बोलि।

क्रोध जुआ व्यभिचार मद
लोभ चोरि मदपान
पतन करावन हार जे
रतनावली महान ॥ ८६ ॥

जुआ = (द्यूत) । विभिचार = (व्यभिचार) । चोरि = (चौर्य) । जे = ये ।

रत्नावली कहती है कि गुस्सा करना, जुआ खेलना, पर पुरुष से प्रेम करना, अभिमान करना, लालच, चोरी, शराब पीना, ये सब बहुत अवनति करनेवाले दुर्गुण हैं ।

१ विभिचार । २ विभचार । ३ × ।

बहु हंसनी बहु बोलनी
बतकट जिभचट नारि
बडबोलनि दूतिल रतन
लहतीं दूपनि मारि ॥ ६० ॥

जिभचट = जीभ की चटोरी । लहतीं (लभन्ते) = पाती हैं । दूपन (दूपणम्) = पाप ।

रत्नावली कहती है कि बहुत हँसनेवाली, बहुत बोलनेवाली, दूसरे की बात काटनेवाली, बढ़-चढ़कर बातें करनेवाली, दूती का काम करनेवाली और चटोरी स्त्रियों को बहुत दोष लग जाते हैं ।

१ दूषन । २ × । ३ बहु, बहु, बडबोलनि ।

कबहूँ नारि उतार सों
करिय न वैर सनेह
दोऊ विधि रतनावली
करत कलंकित एह ॥ ६१ ॥

नारि (नारी)=स्त्री। सनेह (स्नेहः)=प्रेम। एह (एषा)=यह।

कभी उतरी हुई अर्थात् भ्रष्ट स्त्री से वैर और स्नेह नहीं करना चाहिए। रत्नावली कहती हैं कि वह दोनो ही प्रकार से (शत्रु-भाव से और सखी-भाव से) कलंक लगाती है।

१ दोऊ। २ ऐह। ३ वोऊ।

सस्त्र सास्त्र बीना तुरग
वचन लुगाई लोग
पुरुष विशेष हि पाइ जे
बनत सुजोग अजोग ॥ ६२ ॥

सस्त्र (शस्त्रम्)=हथियार। सास्त्र (शास्त्रम्)=विद्या। बीना (वीणा)=सितार। तुरग (तुरंग.)=घोड़ा। लोग (लोकः)=लोग। बिसेस (विशेषः)=खास। पाइ (प्राप्य)=पाकर। सुजोग (सुयोग्यः)=अच्छा। अजोग (अयोग्यः)=बुरा।

हथियार, विद्या, वीणा, घोड़ा, वाणी, स्त्री, पुरुष यदि भले के पास रहते हैं, अच्छे रहते हैं, और बुरे के पास रहते हैं, बिगड़ जाते हैं।

अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च;
पुरुषविशेषं प्राप्य भवन्ति योग्या अयोग्याश्च।

१ बिसेसहि। २ बिसेष। ३ बीना, पुरुष, बिसेसहि।

जारजात मूरप दरिद
सुत विद्या धन पाइ
तृन समान मानत जगहिं
रतनावलि बौराइ ॥ ९३ ॥

मूरप (मूर्ख)=निर्बुद्धि । दरिद (दरिद्रः)=ग़रीब। तृन (तृणम्)=तिनका । मानत (मन्यते)=मानता है ।

रत्नावली कहती है कि परपुरुषोत्पन्न आदमी पुत्र पाकर, मूर्ख विद्या पाकर और दरिद्र पुरुष धन पाकर पागल हो जाता है, और जगत् को, तिनके के समान तुच्छ समझता है ।

१ पाइ, जगहि, बौराइ । २ जगहि । ३ पाइ, बौराइ ।

फूलि फलहि इतराइ पल
जग निंदरहि सतराय
साधु फूलि फलि नइ रहैं
सब सों नइ बतराय ॥ ९४ ॥

पल (खलः)=दुष्ट । नइ (प्रणम्य)=झुककर, नम्र होकर । सतराईं=विरोध करते हैं । इतराईं=इतर इव आचरन्ति । अपनी ओर न देखकर दूसरों की नकल करते हैं ।

दुष्ट पुरुष फूलने-फलने पर अर्थात् धन-धान्य की वृद्धि होने पर इतराने लगते हैं, और सबसे विरोध कर जगत् की निंदा करने लगते हैं । (इसके प्रतिकूल) सज्जन विनम्र होकर रहते हैं, और सबसे नम्रता-पूर्वक वार्तालाप करते हैं ।

१ फलैं इतराइ, निंदरहि, सतराइं, बतराइं । २ फलैं, इतराइं, निंदाइं, सतराइ, बतराइ । ३ फलहिं, इतराईं, निंदाईं, सतराईं, रहहिं, बतराईं ।

एकु एकु आंषरु लिपें
पोथी पूरति होइ
नेकु धरम तिमि नित करौ
रतनावलि गति होइ ॥६५॥१७३॥

आंषरु (अक्षरम्)=अक्षर। लिपें (लिखिते)=लिखने पर । पोथी (पुस्तकम्)=किताब। नेकु=थोड़ा । धरम (धर्मः)=पुण्य। नित (नित्यम्)=प्रतिदिन।

रत्नावली कहती है कि जिस प्रकार एक-एक अक्षर लिखने से पुस्तक पूर्ण हो जाती है, उसी प्रकार नित्यप्रति थोड़ा-थोड़ा धर्म करने से भी सद्गति का लाभ होता है।

१ नैंकु। २ आँखर, करै। ३ आंषर करहु।

दुषनु भोगि रतनावली
मन महं जनि दुषियाइ
पापनु फल दुष भोगि तू
पुनि निरमल ह्वै जाइ ॥६६॥१२८॥

दुषनु (दुःखानि)=दुःखों को। भोगि (संभुज्य)=भोगकर। मनमहँ (मनोमध्ये)=मन में। दुषियाइ=दुखी होओ। पापनु (पापानाम्)=पापों का। निरमल (निर्मला)=स्वच्छ।

रत्नावली कहती है कि दुःखों को भोगकर अपने मन में दुखी मत हो। तू (अपने पूर्व-जन्म के किए हुए) पापों का फल भोगकर फिर शुद्ध हो जायगी।

१ दुख, दुखियाय। २ ×। ३ ×।

ज्यौं ज्यौं दुप भोगत तमहि
दूरि होत तव पाप
रतनावलि निरमल बनत
जिमि सुबरन सहि ताप॥६७॥२६॥

सुबरन (सुवर्णम्)=सोना। सहि (विषह्य)=सहकर। रत्नावली कहती है कि जैसे-जैसे तू दुःख भोगती है, वैसे-वैसे तेरे पाप दूर होते जाते हैं। जैसे स्वर्ण अग्नि में तपाए जाने का कष्ट सहकर स्वच्छ हो जाता है।

१ ज्यौं, भोगति, तसहि। २ ×। ३ सुब।

जासु दलहि लहि हरपि हरि
हरत भगत भव रोग
तासु दास पद दासि ह्वै
रतन लहत कत सोग॥६८॥२५॥

जासु (यस्याः)=जिसके। लहि (संलभ्य)=पाकर। हरपि (प्रहृष्य)=प्रसन्न होकर। हरत (हरति)=दूर करते हैं। तासु (तस्याः)=उसके। दासि (दासी)=सेविका। लहत (लभसे)=पाती है। कत (कथं)=क्यों। सोग (शोकम्)=शोक को।

रत्नावली (अपने से) कहती है कि जिसके पत्ते को प्रसन्नता-पूर्वक ग्रहण करके श्रीभगवान् भक्तों के जन्म मरण-रूपी रोगों को भी दूर कर देते हैं, उस (तुलसी) के दास (तुलसीदास) के चरणों की दासी होकर तू क्यों शोक करती है ?

१ ×। २ ×। ३ ×।

मोइ दोनो संदेस पिय
अनुज नंद के हाथ
रतन समुझि जनि पृथक मोइ
जो सुमिरति रघुनाथ ॥९९॥२७॥

संदेस (सन्देशम्)=सँदेसा। सुमिरत (स्मरति)=याद करता है।

प्रिय (पति तुलसीदासजी) ने अपने छोटे भाई नंददासजी के हाथों (पत्र द्वारा) मुझे यह संदेश भेजा है कि हे रत्नावली ! मुझे तू अपने से पृथक् मत समझ, जो तू श्रीरघुनाथ (रामचन्द्रजी) का स्मरण करती है, तो।

१ × । २ पियत्र, समुझी, प्रियक । ३ मोहि, मोहि ।

जौवन प्रभुता भूरि धन
रतनावलि अविचार
एकु एकु अनरथ करै
किमु समुदित जदि चार॥१००॥१८९॥

जौवन (यौवनम्)=जवानी । अनरथ (अनर्थम्)=बुराई । जदि (यदि)=अगर । अविचार=सत्-असत् का विचार न होना । समुदित=सम्+उदित ।

रत्नावली कहती है कि जवानी, बड़े पद का मिलना, धन की अधिकता और मूर्खता, इनमें से एक-एक बात भी बड़ी-बड़ी बुराई कर डालती है, यदि ये चारों इकट्ठी हो जायँ, तब तो क्या ही कहना है।

१ × । २ रतनावली । ३ यौवन ।

आलस तजि रतनावली
जथासमय करि काज
अबको करिबो अबहिं करि
तबहिं पुरैं सुप साज ॥१०१॥८३॥

आलस (आलस्यम्)=सुस्ती को। तजि (संत्यज्य)= छोड़कर। जथासमय (यथासमयम्)=समयानुकूल। काज (कार्यम्)=काम को। सुप (सुखम्)=आराम।

रत्नावली कहती है कि आलस्य का त्यागकर ठीक-ठीक समय पर काम करती रहो। इस समय के काम को अभी कर डालो, तभी तुम्हारे सुख-साज पूरे होंगे।

१ प=ष। २ ×। ३ करिबौ।

रतनावलि सबसों प्रथम
जगि उठि करि गृह काज
सबन सुवाइहि सोइ तिय
धरि सम्हारि गृह साज ॥१०२॥८४॥

जगि (जागृत्वा)=जागकर। उठि (उत्थाय)=उठकर। सुवाइहि (स्वापयित्वा)=सुलाकर। सम्हारि (संभार्य)= सँभालकर।

रत्नावली कहती है कि हे स्त्री! सबसे पहले जगकर उठ, और घर के काम-काज कर। (रात में) सबको सुलाकर तब सो, और घर की वस्तुओं को सँभालकर रख।

१ ष=प। सोम। २ प्रियम। ३ संभारि।

अगिनि तूल चकमक दिया
निसि महँ धरहु सम्हारि
रतनावलि जनु का समय
काज परै लेउ बारि ॥ १०३॥८२॥

अगिनि (अग्नि)=आग। निसि (निशि)=रात में। जनु (न जाने)=न-मालूम।

रत्नावली कहती है कि अग्नि, रुई, चकमक पत्थर और दीपक को रात में सँभालकर रक्खो, जाने किस समय आवश्यकता पड़ जाय। (वस्तुएँ ठीक-ठीक रक्खी रहने पर, सुगमता से) दीपक जला सकती हो।

१ ×। २ ×। ३ —संभारि, परहि।

मात पिता भ्रातादि सब
जे परिमित दातार
रतनावलि दातार इक
सरबस को भरतार ॥ १०४ ॥ १३१॥

दातार (दातारः)=देनेवाले। सरबस (सर्वस्वम्)=सब कुछ। भरतार (भर्ता)=पति।

रत्नावली कहती है कि माता, पिता, भाई आदिक संबंधी थोड़ा सुख देनेवाले हैं। एकमात्र पति ही स्त्री को सर्वस्व अर्थात् इस लोक और परलोक का सुख देनेवाला है।

१ ब=व। २ परीमित। ३ ×।

करमचारि जन सों भली
जथाकाज वतरानि
बहु वतानि रतनावली
गुनि अकाज की पानि ॥ १०५॥ ७६॥

करमचारि (कर्मचारी)=नौकर । जथाकाज (यथाकायम्)=आवश्यकतानुसार । गुनि (गणय)=समझो । अकाज (अकार्यम्)=बुराई । पानि (खनिः)=खान ।

रत्नावली कहती है कि नौकर-चाकरों से आवश्यकतानुसार ही वार्तालाप करना अच्छा है। इन लोगों के साथ आवश्यकता से अधिक बोलने को बुराई की खान समझो।

१ व = ब । २ करमचारी ।

मन बानी अरु करम में
सतजन एक लखायँ
रतन जोइ विपरीत गति
दुरजन सोइ कहायँ ॥१०६॥१६०॥

बानी (वाणी)=वचन। करम (कर्म)=काम। सतजन (सज्जनः)=भला आदमी। लखायँ (लक्ष्यन्ते)=दिखाई देते हैं। दुरजन (दुर्जनः)=बुरा आदमी। जोइ (य एव)=जो ही। सोइ (स एव)=वही। कहायँ (कथ्यन्ते)=कहलाते हैं।

रत्नावली कहती है कि सज्जन मन, वचन और कर्म में एक-से दिखाई देते हैं, और जो इनसे भिन्न होते हैं, अर्थात् मन, वाणी और कर्म में भिन्न हैं, वे ही दुर्जन कहलाते हैं।

१ लखाय, कहाय । २ लखाइं, जोई, कहाइं । ३ लखायं, कहायं ।

पल रिपु बस परि जे रषहिं
मतिपन सु ँ जुगति पूरि
पतिबरता तिन तियनु की
रतनावलि पगधूरि ॥१०७॥१६३॥

पल (खलः)=दुष्ट । बस (वशे)=क़ाबू में । रषहिं (रक्षन्ति)=रखती हैं । जुगति (युक्तिः)=तरकीब । पतिबरता (पतिव्रता)=पतिपरायणी । तियनु (स्त्रियः)= स्त्रियाँ ।

रत्नावली कहती है कि जो स्त्रियाँ दुष्ट और शत्रु के वश में पड़कर भी अपनी सुंदर युक्तियों के प्रभाव से अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं, मैं उन पतिव्रता स्त्रियों के चरणों की धूलि (मस्तक पर धारण करने योग्य) हूँ ।

१ × । २ पतिब्रिरता । ३ ×

अनृत बचन माया रचन
रतनावली बिसारि
माया अनिरत कारनें
सती तजी त्रिपुरारि ॥१०८॥८०॥

बिसारि (विसार्य)=तज दो (हटाकर भुलाकर) । अनिरत (अनृतम्)=झूठ । त्रिपुरारि=शिवजी ।

रत्नावली कहती है कि झूठ बोलना और छलछंद रचना भुला दो । भगवान् शंकर ने श्रीसतीदेवी को इन दोनो कारणों से ही त्याग दिया था ।

१ तजी । २ अनिरत । ३ तजौं ।

साहस सों रतनावली
जनि करि कबहूँ नेह
सहसा पितु घर गौन करि
सती जराई देह ॥१०९॥८१ ॥

गौन (गमनम्)=जाना । साहस=बल-पूर्वक अविवेक के साथ कार्य करना (हठ) । सहसा=बल से (हठ से) बिना सोचे-विचारे ।

रत्नावली कहती है कि कभी साहस से स्नेह मत करो, अर्थात् अपनी शक्ति का अतिक्रमण करके कभी कोई काम न करो । साहस-पूर्वक पिता (दक्ष) के घर (यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये) जाकर सतीजी को अपना शरीर (योगाग्नि से) भस्म करना पड़ा था ।

१ × । २ × । ३ कबहुँ ।

रतनावलि नइ चलि सदा
नइ सुभाइ बतराइ
नारि प्रशंसा नइ रहैं
नित नूतन अधिकाइ ॥११०॥१६२॥

नइ (विनम्य)=झुककर । प्रशंसा=तारीफ़ ।

रत्नावली कहती है कि हमेशा नम्रता-पूर्वक आचरण करते हुए नम्रता-पूर्वक ही सरलस्वभाव से वार्तालाप करना चाहिए । नम्रता-पूर्वक रहनेवाली स्त्री की प्रशंसा प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ती रहती है ।

जासु चरित वर अनुसरै
सतवंती हरपाइ
ता इक नारी रतन पै
रतनावलि बलि जाइ ॥१११॥२०१॥

अनुसरै (अनुसरेत्)=अनुकरण करे। सतवंती (सत्यवती)=पतिव्रता। हरपाइ (प्रहृष्य)=प्रसन्न होकर। इक (एका)=एक।

जिसके सुंदर चरित्र का अनुकरण (प्रत्येक) सती महिला प्रसन्न होकर करे, रत्नावली कहती है, मैं उस एक नारी-रत्न पर अपने को निछावर करती हूँ।

१ व=व। २ ×। ३ अनुसरहि।

इति श्रीरत्नावली लघु दोहा-संग्रह सम्पूर्णम्।
लिखित मिदम् पुस्तकम् पंडित रामचन्द्र
बदरियाग्रामे। शुभ संवत् १६७४
चैत्रकृष्णा १२ भृगुवासरे। ॐ नमो
भगवते वराहाय। शुभम्
भूयात्। इति।

इति श्रीरत्नावली लघु दोहा-संग्रिह संपूरणम्।
लिषितं ईसुरनाथ पंडीत सोरोंजी मिती
माह सुदी तेरसि १३ सोमवार संवत्
१८७९ में ॥ गंगा ॥ इति शुभम् ॥

[टिप्पणी—दो सौ एक दोहेवाली 'दोहा-रत्नावली' के वे दोहे, जो लघु दोहा-संग्रह' में नहीं हैं, नीचे दिए जाते हैं। इनकी पहली क्रम संख्या दोहा रत्नावली' के अनुसार है और दूसरी क्रमागत है। प्रधान पाठ गंगाधर के और पाठांतर गोपालदास के अनुसार है ।]

सुभहु वचन अप्रकृत्रित गरल
रतन प्रकृत के साथ
जो मो कहँ पति प्रेम सँग
ईस प्रेम की गाथ ॥४॥११२॥

प्रकृत = प्रकरण। अप्रकृत्रित (अशुद्ध पाठ) अप्रकृत = प्रकरण-विरुद्ध। गाथ (गाथा)=कथा।

रत्नावली कहती है, प्रकरण के साथ प्रकरण-विरुद्ध उत्तम वचन भी विष के समान हो जाता है। पति-प्रेम की प्रशंसा के प्रकरण में प्रकरण-विरुद्ध ईश्वर-प्रेम का वर्णन करना मेरे लिये विषवत् हो गया, अर्थात् उन्होंने मुझे त्याग दिया, और वैराग्य धारण कर लिया।

२ अप्रकृत, कहं, संग।

कहि अनुसंगी वचन हूँ
परिनति हिये विचारि
जो न होइ पछिताउ उर
रतनावलि अनुहारि ॥५॥११३॥

परिनति (परिणति)=परिणाम, नत जा। अनुसंगी= प्रसंग से कहा हुआ।

प्रसंग-प्राप्त उचित वचन भी हृदय में परिणाम का विचार करके ही बोलना चाहिए, जिससे पीछे मुझ रत्नावली के समान मन में पछतावा न हो।

(चाहे बात ठीक भी हो, फिर भी उसके फल का विचार करके ही उसका उच्चारण करना चाहिए। रत्नावली को ठीक बात कह-कर भी जीवन भर पति-वियोग का दुस्सह दुःख उठाना पड़ा ।)

उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यजातम्

परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन ।

१ ×

रतन दैववस अमृत विष
विष अमिरत बनि जात
सूधी हू उलटी परै
उलटी सूधी बात ॥६॥११४॥

दैव = भाग्य । अमिरत (अमृतम्) = अमृत ।

रत्नावली कहती है कि (कभी-कभी) भाग्य-वश अमृत भी विष बन जाता है, और विष अमृत बन जाता है । सीधी बात उलटी हो जाती है, और उलटी बात सीधी हो जाती है ।

१ ×

रतनावलि औरै कछू
चहिय होइ कछु और
पाँच पैंड आगे चलै
होनहार सब ठौर ॥७॥११५॥

रत्नावली कहती है कि मनुष्य चाहता कुछ है, किंतु हो जाता है कुछ और ही । भवितव्यता सभी जगह पाँच पद आगे ही चलती है ।

तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलै सहाय

आपु न आवै ताहि पै ताहि तहाँ लै जाय ।

१ औरहिं, सब ।

भल चाँहत रतनावली
बिधि बस अनभल होइ
हौं पिय प्रेम चह्यो चह्यो
दयो मूल तें पोइ ॥८॥११६॥

पोइ दयो=खो दिया।

रत्नावली कहती है कि मनुष्य भला चाहता है, किंतु विधाता की इच्छा से बुरा हो जाता है। मैं चाहती थी कि पति का मुझसे प्रेम बढ़े, किंतु विधाता ने तो उसे मूल-सहित ही उखाड़ डाला।

चालि चाह्यो जानो सरग, हरि पठयो पाताल।

"Man proposes, God disposes"

१ ×

जानि परै कहुँ रज्जु अहि
कहुँ अहि रज्जु लखात
रज्जु रज्जु अहि अहि कबहुँ
रतन समय की बात ॥९॥११७॥

रज्जु=रस्सी। अहि=सर्प।

रत्नावली कहती है कि कभी तो रस्सी साँप-सी प्रतीत होती है, कभी सर्प रस्सी-सा प्रतीत होता है, और कभी रस्सी रस्सी ही और साँप साँप ही प्रतीत होता है। यह सब समय की बात है।

(रजोगुण और तमोगुण में वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता। सतोगुण में होता है।)

रज्जौ यथाहेर्भ्रमः (तुलसी)

१ ×

कबहुँ कि ऊगे भाग रवि
कबहुँ कि होइ विहान
कबहुँ कि विकसै उर कमल
रतनावलि सकुचौंन ॥ १८ ॥११८॥

ऊगे=उदय होगा। भाग=भाग्य। रवि=सूर्य। विहान (प्रभात)=सवेरा। उर=हृदय।

रत्नावली कहती है कि क्या कभी मेरे भाग्य-रूपी सूर्य का उदय होगा, क्या कभी (मेरे जीवन का) प्रभात होगा, क्या कभी मेरा मुरझाया हुआ हृदय-कमल खिलेगा।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।

१ कबहु, विकसे, सकुचान।

सोवत सों पिय जगि गए
जगिहु गई हों सोइ
कबहुँ कि अब रतनावलिहि
आय जगावें मोइ ॥ १६ ॥ ११६॥

मोइ=मुझको।

रत्नावली कहती है कि जिन अपने पति को मैं शयनावस्था में (सोया हुआ) जानती थी, वह जागकर चले गए, और मैं जगकर भी सो गई। क्या वह अब मुझे आनी आकर जगाएँगे।

१ कबहु, जगावहिं।

राम जासु हिरदे बसत
सो पिय मम उर धाम
एक बसत दोऊ बसैं
रतन भाग अभिराम ॥ २६ ॥ १२०।

हिरदे (हृदय)=मन में। अभिराम=सुंदर।

रत्नावली कहती है कि श्रीराम जिनके हृदय में निवास करते हैं, वह पति मेरे हृदय-रूपी भवन में निवास करते हैं। (मेरे हृदय में) एक (पति) के निवास के कारण दोनों (पति और परमेश्वर) वास करते हैं। मेरा भाग्य बड़ा अच्छा है।

१ हिरदे।

पति सेवति रतनावली
सकुची धरि मन लाज
सकुच गई कछु पिय गए
सज्यो न सेवा साज॥ ३२ ॥१२१॥

लाज (लज्जा)=शर्म।

रत्नावली कहती है कि मैं मन में (गुरुजनों की) लज्जा (शर्म) करती हुई पति की सेवा संकोच से करती थी। जब कुछ-कुछ संकोच दूर हुआ, तब मेरे पतिदेव (तुलसीदासजी) चले गए, इसलिये मेरा पति-सेवा का साज सज न सका।

1 ×

पतिपद सेवा सों रहित
रतन पादुका सेइ
गिरत नाव सों रज्जु तिहि
सरित पार करि देइ ॥ ३४ ॥ १२२॥

तिहि=उसको। सरित=नदी।

रत्नावली कहती है कि यदि तू पति के (साक्षात्) चरणों की सेवा से वंचित है, तो उनकी खड़ाऊँ की सेवा कर। नाव से गिरा हुआ आदमी यदि नाव की रस्सी पकड़ लेता है, तो यह रस्सी भी उसे नदी से पार कर देती है।

३ ×।

रतनावलि पति राग रँगि
दै विराग मैं आगि
उमा रमा बड़ भागिनी
नित पतिपद अनुराग ॥३५॥१२३॥

आगि=अग्नि। विराग=वैराग्य। उमा=पार्वती। रमा=लक्ष्मी। राग=प्रेम (और रँग)। अनुरागि=रँगकर।

रत्नावली कहती है कि तू पति के (प्रेम) रंग में रंग और वैराग्य में आग लगा दे। भगवती पार्वती और लक्ष्मीजी पति-चरणों के प्रेम में रंगकर (ही) बड़ी भाग्यशालिनी (कहलाती) हैं। (वैराग्य से नहीं) अर्थात् पति-प्रेम ही स्त्री के लिये भाग्यशालिनी बनने का साधन है। ( )

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्तलोकानसमश्नुते।

१ रंगि, महं, अनुरागि, उमा रमा बड़ भागिनी।

कबहु रह्यौ नवनीत सो
पिय हिय भयो कठोर
किमि न द्रवहि हिम उपल सम
रतन फिरैं दिन मोर ॥ ३६ ॥ १२४॥

नवनीत=मक्खन। हिय (हृदयम्)=हृदय। हिमउपल=ओला। द्रवहि=पानी होकर बहता है। मोर=मेरा।

रत्नावली कहती है कि मेरे प्रिय पतिदेव का हृदय एक समय मक्खन के समान कोमल था, किंतु अब वह कठोर हो गया है। वह (हृदय) अब ओले के समान क्यों नहीं गल जाता, जिससे मेरे दिन फिर जायँ।

२ कबहुं, किमु, फिरइं।

कर गहि लाए नाथ तुम
बादन बहु बजवाय
पदहु न परसाए तजत
रतनावलिहि जगाय ॥ ३७ ॥१२५॥

बादन=बाजा। परसाए (अस्पर्शयत्)=छुवाया। तजत (त्यजति=छोड़ते हुए—शत्रन्त सप्तमी) हु, हू=भी। हि=को।

मलिया सींची विविध विधि
    रतन लता करि प्यार
नहिं वसंत आगम भयो
    तब लगि परयो तुसार ॥३८॥१२६॥

मलिया = माली । तुसार (तुषार) = पाला । विविध = अनेक । विधि = रीति ।

माली (परमात्मा या माता पिता) ने अनेक विधियों से बड़े प्रेम के साथ मुझ रत्नावलि-रूपी लता (बेल) को सींचा था, परंतु वसंत ऋतु आने भी न पाई कि तब तक तुषार पड़ गया ।

१—विविध, तब परयो ।

बैस बारहीं कर गह्यो
    सोरहि गौन कराय
सत्ताइस लागत करी
    नाथ रतन असहाय ॥४१॥१२७॥

बैस (वयस्) = उम्र । बारहीं = बारहवें । सोरही = सोलहवें ।

रत्नावली कहती है कि हे नाथ, आपने मेरे बारहवें वर्ष में (मेरा) पाणिग्रहण किया, तदनंतर १६ वर्ष के वय में गौना किया, और सत्ताईसवें वर्ष के लगते ही (अर्थात् उस वर्ष के प्रारंभ में) मुझे (त्यागकर) असहाय कर दिया ।

१ — ।

सागर पर रस ससि रतन
संवत् मो दुपदाय
पिय वियोग जननी मरन
करन न भूल्यो जाय ॥४२॥१२८॥

सागर = ४ अथवा ७; किंतु गणना में पहले अर्थ की ही प्रधानता है।

प = ०; 'पर' पाठ अशुद्ध है। रकार भूल से लिखा गया है।

रस = ६
ससि = १ "अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार १६०४

ससि (शशी) = चन्द्रमा। दुप (दुःख)। रस = मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त।

रत्नावली कहती है कि १६०४ संवत् मेरे लिये दुःखदायी हुआ। यह पति के वियोग को और माता की मृत्यु को करनेवाला है। मैं इसे भुला नहीं सकती। गोस्वामी तुलसीदास अपनी पत्नी को १६०४ वि० में छोड़कर चले गए, और उसी वर्ष रत्नावली की माता दयावती की मृत्यु हुई थी।

१—सागर प रस ससी रतन, दुपदाइ, जाइ।

पिय वियोग दावा दही
रतन काल नगिचाय
निज कर दाहैं आइ तन
तौ मन अबहुँ सिराय ॥४३॥१२९॥

दावा (दावानल) = वन की अग्नि। नगिचाय (फ़ारसी-शब्द) = नजदीक आता है। सिराय (शीतायते) = ठंडा होता है।

रत्नावली कहती है कि मैं पति के वियोग-रूपी दावानल में जल रही हूँ, और उधर मृत्यु का समय भी पास आ रहा है। यदि मेरे पति (तुलसीदास) आकर मेरे शरीर को अपने हाथों जला दें, तो अब भी मन में शीतलता हो जाय।

१—रत्न काल नगिवाय, अवधु। (न भूल से रह गया है)

रतन प्रेम डंडी तुला
पला जुरे इक सार
एक बाट पीड़ा सहै
एक गेह संभार ॥४५॥१३०॥

तुला=तराजू ; यहाँ तात्पर्य गार्हस्थ्य धर्म से है। बाट= बटखरा। मार्गगेह-संसार=गृहस्थ की वस्तुएँ (दाल, चावल आदि); गृहस्थ का झंझट अथवा प्रबंध।

जिस प्रकार तराजू के एक पलड़े में बाट (सेर, अंसेरी आदि) रक्खा जाता है, और दूसरे में गृह-सामग्री (दाल, चावल आदि), उसी प्रकार दंपति में से एक (अर्थात् तुलसीदास) तो बाट (मार्ग) के कष्टों का सहन कर रहा है, और दूसरा (अर्थात् रत्नावली) घर के झंझटों में लगा हुआ है। दोनो ही कष्ट सह रहे हैं।

१—×।

सब रस रस इक ब्रह्म रस
रतन कहत बुध लोय।
पै तिय कह पिय प्रेम रस
बिंदु सरिस नहि सोय ॥४८॥१३१॥

लोय (लोक)=लोग। पै (परम्)=किंतु। सरिस (सदृश)=समान। रस=मधुर आदि, आनंद।

रत्नावली कहती है कि सब आनंदों में एकमात्र ब्रह्मानंद ही श्रेष्ठ आनंद है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। किंतु स्त्री के लिये तो यह ब्रह्मानंद पति-प्रेमानंद की एक बूँद के समान भी नहीं।

१—कहं।

तिय जीवन तेमन सरिस
　　तौलौं कछुक रुचै न
पिय सनेह रस रामरस
　　जौलौं रतन मिलै न ॥४६॥१२२॥

तिय=स्त्री। जीवन=जिंदगी। तेमन=शाक-भाजी। रुचै (रोचते)=अच्छा लगता है। सनेह (स्नेह)=प्रेम। रामरस (लवण)=नमक।

रत्नावली कहती है कि स्त्री का जीवन शाक-भाजी (तरकारी) के समान है। जब तक उसमें पति-स्नेह-रूपी नमक नहीं मिलता, तब तक वह अच्छी नहीं लगती, अर्थात् नीरस रहती है।

जिस स्त्री पर पति प्रेम नहीं करता, उस स्त्री का जीवन निरर्थक है।

१—जौलों।

अंध पंगु रोगी बधिर
　　सुतहि न त्यागति माय
तिमि कुरूप दुरगुन पतिहि
　　रतन न सती बिहाय ॥५२॥१२३॥

दुरगुन (दुर्गुणः)। विहाय (वि+हा+ल्यप्)=त्यागकर, त्यागती है, या त्यागे।

रत्नावली कहती है कि जिस प्रकार माता अपने अंधे, लँगड़े, बीमार और बहिरे बेटे को भी नहीं छोड़ती, उसी प्रकार कुरूप और दुर्गुणी भी पति को पतिव्रता स्त्री नहीं त्यागती।

धर्मशास्त्र—विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ;
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः।

१—माइ, दुरगुनि,विहाइ।

बन बाघिनि आमिष भकति
भूखी घास न खाइ
रतन सती तिमि दुख सहित
सुख हित अघ न कमाइ ॥५४॥१३४॥

बाघिन (व्याघ्री)। आमिष=मांस। भूखी (बुभुक्षिता)= भूखी। अघ=पाप। अघ कमाना=पाप-कार्य करना।

रत्नावली कहती है कि व्याघ्री वन में मांस खाती है। वह भूख से व्याकुल होकर भी घास नहीं खाती। इसी प्रकार पतिव्रता स्त्री दुःख सह लेती है, किंतु (क्षणिक) सुख के लिये पाप का संग्रह नहीं करती।

१—भषति, पाइ।

बिपत कसौटी पै बिमल
जासु चरित दुति होय
जगत, सराहन जोग तिय
रतन सती है सोय ॥५५॥१३५॥

जासु (यस्याः) = जिसका । जोग (योग्या) = लायक़ । दुति (द्युतिः) = कांति ।

जिसके चरित्र की कांति विपत्ति-रूपी कसौटी पर निर्मल उतरती है, रत्नावली कहती है कि जगत् के सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, और वही सती पतिव्रता है ।

विपति, कसौटी जे कसे, तेही साँचे मीत ।

१—विपति, होइ, सोइ ।

सती बनत जीवन लगै
असती बनत न देर
गिरत देर लागै कहा
चढ़िबो कठिन सुमेर ॥५६॥१३६॥

असती = दुष्टा । सुमेर (सुमेरुः) = एक पर्वत का नाम ।

पतिव्रता बनने में सारा जीवन लग जाता है, पर भ्रष्ट होने में देर नहीं लगती । सुमेरु पर्वत से गिरते हुए देर नहीं लगती, किंतु उस पर चढ़ना बड़ा कठिन है ।

१—बनत, चढ़िबौ ।

बाल बैस ही सों धरौ
दया धरम कुल कानि
बड़े भयें रतनावली
कठिन परैगी बानि ॥५७॥१३७॥

बैस (वयस्) = उम्र, अवस्था । कानि = मर्यादा । बानि = अभ्यास ।

रत्नावली कहती है कि बचपन से ही दया, धर्म और कुल-मर्यादा को धारण करो, (नहीं तो) बड़े होने पर आदत कठिनाई से पड़ेगी।

१—बाल भए, बानि।

बारेपन सों मातु पितु
जैसी डारत बानि
सो न छुटाये पुनि छुटत
रतन भयेहु सयानि ॥१२८॥१२८॥

सयानि (सयाना)=बड़ी। बारेपन (बाल्यम्)=बचपन।

रत्नावली कहती है कि माता-पिता बचपन से (बच्चे में) जो आदत डाल देते हैं, वह फिर बड़े होने पर छुड़ाने से भी नहीं छूटती।

१—बारे, छुटायें, छुटति।

नाच विषय रस गीत गँधि
भूषन भ्रमन विचारु
अंग राग आलस रतन
कन्यहि हित न सिंगारु ॥१२६॥१२६॥

आलस (आलस्यम्)=सुस्ती। सिंगारु (श्रृंगारः)। हित = हितकारी।

रत्नावली कहती है कि कन्याओं के लिये इतनी बातें हितकर नहीं हैं—१ नाचना, २ विषय-रस के भद्दे गीत गाना, ३ इत्र-फुलेल लगाना, ४ गहने पहनना, ५ (पर पुरुष अथवा कुलटा के साथ) भ्रमण-विचरण, ६ ओठ आदि अंगों को रँगना और ७ आलस्य।

१—गँधि।

लरिकन अँग पेलनि हँसनि
बैठनि रतन इकंत
मलिन करन कन्या चरित
हरन सील कहँ संत ॥६०॥१४०॥

पेलनि (खेलनम्)। हँसनि (हसनम्)। हरनसील (शील-हरणम्)।

रत्नावली कहती है कि लड़कों के साथ खेलना, हँसना और एकांत में बैठना कन्याओं के चरित्र को मलीन करनेवाला और शील का अपहरण करनेवाला है, ऐसा सज्जन कहते हैं।

मनुजी का वचन है कि युवती स्त्री को एकांत में अपने पिता और भाई के साथ भी नहीं बैठना चाहिए।

१—× ।

नयन वचन तिय वसन निज
निरमल नीचे धार
करतब रतन विचार तिमि
ऊँचे राषि उदार ॥६१॥१४१॥

वसन = वस्त्र ।

रत्नावली कहती है कि हे स्त्री, तू अपने नेत्र, वाणी और वस्त्रों को स्वच्छ और नीचे रख, और विचार और कर्तव्य को ऊँचा और उदार रख। अर्थात् काजल से आँखों को निर्मल रख और पृथ्वी की ओर देखकर चल। स्पष्ट भाषण द्वारा वाणी को निर्मल रख और नीचे स्वर में बोल। धुले कपड़े पहन और वे भी ऐसे कि एड़ी तक नीचे। विचार ऊँचे रख और अच्छे काम कर।

(1) Plain living and high thinking

(1) Cleanliness is next to godliness

१—करतब, ऊँचे।

हँसन कसन हिचकन छिंकन
अँगड़न ऊँचे बैन
गुरुजन सनमुख भल न निज
ऊँचे आसन नैन ॥६२॥१४२॥

कसन=खाँसना। छिकन=छींकना। नैन (नयन)=नेत्र। बैन=वचन।

बड़े लोगों के सामने हँसना, खाँसना, हिचकी लेना, छींकना, अँगड़ाई लेना, ऊँचे स्वर में बोलना और अपना आसन उनसे ऊँचा रखना ठीक नहीं।

१—हँसन, अंगड़न, ऊँचे, बैन, ऊँचे।

सदन भेद तन धन रतन
सुरति सुभेषज अन्न
दान धरम उपकार तिमि
राखि बधू परछन्न ॥६३॥१४३॥

परछन्न (प्रच्छन्नम्)=गुप्त। तिमि=इसी प्रकार।

रत्नावली कहती है कि हे बहू, तू अपनी इन बातों को गुप्त रख—१ घर का भेद, २ शरीर, ३ धन, ४ पति-संग विहार, ५ औषधि, ६ भोजन-सामग्री, ७ दान, ८ पुण्य कार्य और ९ परोपकार।

१—बधू।

भूषन रतन अनेक जग
पै न सील सम कोइ
सील जासु नैनन बसत
सो जग भूषन होइ ॥६४॥१४४॥

भूषन (भूषण)=गहना। नैन=नैना, नेत्र।

रत्नावली कहती है कि संसार में अनेक प्रकार के गहने हैं, किंतु शील के समान कोई गहना नहीं। जिस(स्त्री)के नेत्रों में शील रहता है, वही जगत् का आभूषण बन जाती है।

१ - ×।

सत्य सरस पानी रतन
सील लाज जे तीन
भूषन साजति जो सती
सोभा तासु अधीन ॥६५॥१४५॥

तासु (तस्याः)=उसके।

रत्नावली कहती है कि (१) सची और रसीली वाणी, (२) शील और (३) लज्जा, इन तीन गहनों से जो अपने को सजाती है, उसके अधीन शोभा रहती है, अर्थात् सत्य-मधुर-भाषिणी, शीलवती और लज्जावती स्त्री की परम शोभा होती है।

१—बानी।

ऊँचे कुल जनमें रतन
रूपवती पुनि होइ
धरम. दया गुन सील बिन
ताहि सराह न कोइ ॥६७॥ १४६ ॥

पुनि (पुनः) = फिर। सराहै (श्लाघते) = प्रशंसा करता है। रत्नावली कहती है कि स्त्री का ऊँचे कुल में जन्म हो, और फिर वह सुंदरी भी हो, किंतु धर्म, दया, गुण और शील के बिना उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता।

१—ऊंचे, रूपवती, बिनु।

स्वजन सखी सों जनि करहु
कबहुँ ऋन व्यौहार
ऋन सों प्रीति प्रतीति तिय
रतन होति सब छार ॥६८॥१४७॥

जनि = मत। छार (क्षार) = राख, धूल। कबहुँ = कबहूँ। रत्नावली कहती है कि अपने नातेदार और सखियों से ऋण का व्यवहार मत करो, अर्थात् इनसे उधार न तो लो और न इन्हें उधार दो। उधार लेने-देने से स्त्री का (नातेदार और सखियों से) सब प्रेम-भाव नष्ट हो जाता है।

तीन बात तहँ ना करै जहाँ प्रीति की चाह—
धन-ऋण, बहुत मुलाहजा, अबना और निगाह।

१—कबहू।

रतन हास पर घर गमन
खेल देह सिंगार
तज उतसवन विलोकिवो
लहि वियोग भरतार ॥६९॥४८॥

खेल = खेल। लहि = पाकर। भरतार (भर्त्ता) = पति।
बिलोकिवो = देखना। हास = हँसी।

रत्नावली कहती है कि पति के (परदेश-गमन अथवा स्वर्ग-गमन से) वियोग होने पर हास-परिहास, पराए घर जाना, क्रीड़ा, देह की (तैल-अंजन आदि द्वारा) सजावट और (मेले-तमाशे, सगाई-विवाह आदि) उत्सवों में जाना—इन सब बातों का परित्याग कर दो।

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्;
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका।

१—लहि, बिलोकिवो।

रतन झरोखन झाँकिवो
तिमि बैठनि गृह द्वार
बात बात प्रलपन हँसन
तिय दूपन दातार ॥७०॥४९॥

प्रलपन = रोना-झींकना। दातार = देनेवाला।
रत्नावली कहती है कि झरोखे से बाहर झाँकना, घर के दरवाज़े पर बैठना, (ज़रा-ज़रा-सी) बात पर रोना और हँसना—ये बातें स्त्रियों को दोष लगानेवाली हैं।

१—झाँकिबो, बात बात।

कबहुँ अकेली जनि करहुँ
सतहु निकट पयान
देखि अकेली तिय रतन
तजत संत हू ज्ञान ॥ ७२॥१५ ॥

पयान (प्रयाण)=गमन, प्रस्थान ।

रत्नावली कहती है कि अकेली तो तुम कभी किसी महात्मा के निकट भी मत जाओ। स्त्री को एकाकिनी देखकर संत-महात्मा भी ज्ञान भूल जाते हैं।

१—कबहुँ; करहु, देखि, ग्यान ।

अनजाने जन को रतन
कबहुँ न करि विसवास
वस्तु न ताकी पाइ कछु
देइ न गेह निवास ॥ ७८ ॥ १५१ ॥

बिसवास (विश्वास)=भरोसा, यकीन ।

रत्नावली कहती है कि अपरिचित मनुष्य का कभी विश्वास मत करो। उसकी दी हुई कोई चीज़ मत खाओ, और न उसे अपने घर में ठहराओ।

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।

१—कबहु ।

तू गृह श्री ह्री धी रतन
तू तिय सकति महान
तू अबला सबला बनें
धरि उर सती विधान ॥८५॥१५२॥

सकति (शक्ति) । विधान = काम ।

रत्नावली कहती है कि हे स्त्री, तू घर की शोभा, लज्जा (शील) और बुद्धि (मति) है । तू महती स्त्री-शक्ति है । तू अपने हृदय में पतिव्रताओं के कर्तव्यों को धारण करके (शरीर से) अबला होती हुई भी (आत्मिक बल के कारण) बलवती बन जाती है ।

१—अबला, बनै ।

रतन रमा - सी सुष सदन
बनि सारद धरिज्ञान
खलन दलन हित कालिका
बनि कर धारि कृपान ॥८६॥१५३॥

सारद (शारदा)=सरस्वती । कृपान = खड्ग । हित = लिये । कर=हाथ ।

रत्नावली कहती है कि लक्ष्मीजी के समान सुखमयी बनो, विद्योपार्जन के द्वारा सरस्वती बनो, और दुष्टों के संहार के लिये हाथ में खड्ग धारण कर काली बनो ।

१—बनि, ग्यान, बनि ।

सासु ससुर पति पद परसि
रतनावलि उठि प्रात
सादर सेइ सनेह नित
सुनि सादर तेहि बात ॥८७॥१५४॥

परसि (स्पृश) = छूकर ।

रत्नावली कहती है कि प्रातःकाल उठकर सास, ससुर और पति के चरणों का स्पर्श करो । नित्य प्रेम-पूर्वक और आदर-सहित उनकी सेवा करो, और आदर के साथ ही उनकी आज्ञा का पालन करो ।

१—प्रात ; इस पाठ में 'उठि' शब्द मूल से रह गया है ।

सासु ससुर पति पद रतन
कुल तिय तीरथ धाम
सेवइ तिय जग जस लहै
पुनि पति-लोक ललाम ॥८८॥१५५॥

तीरथ (तीर्थ) । धाम = स्थान । जस (यश) = कीर्ति । ललाम = सुंदर । कुल-तिय = सत्कुल की स्त्री ।

रत्नावली कहती है कि कुलीन स्त्री के लिये सास, ससुर और पति के चरण ही तीर्थ (चारों) धाम हैं । उनकी सेवा करके स्त्री को संसार में यश मिलता है, और फिर (मरणानंतर) सुंदर पति-लोक मिलता है ।

स्मृति—कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ।

१—सेवहि, लहहि ।

सौतिहि सषि सम व्यवहरौ
रतन भेद करि दूरि
तासु तनय निज तनय गनि
लहौ सुजस सुष भूरि ॥६४॥१५६॥

सौति (सखी) । गनि (संगण्य) = समझकर । लहौ (लभस्व) = पाओ । सुष (सुखम्) = सुख । भूरि = बहुत ।

रत्नावली कहती है कि भेद-भाव हटाकर सपत्नी के साथ सखी के समान व्यवहार रक्खो । उसके पुत्र को अपना पुत्र समझकर बहुत यश और सुख प्राप्त करो ।

१—व्यवहरहु, लहहु ।

गुरु सषि बांधव भृत्य जन
जथा जोग गुनि चित्त
रतन इनहिं सादर सदा
बरतहु वितरहु वित्त ॥ ६५ ॥१५७॥

सषि (सखी) । जथाजोग (यथायोग्य) । वितरहु (वितर) = दो । वित्त = धन ।

रत्नावली कहती है कि गुरु, मित्र (सखी), नातेदार और सेवकों का चित्त में यथायोग्य विचारकर इनके साथ सदा आदर का व्यवहार करो और धन दो ।

१—गुरु, वित्त ।

घरि धुवाइ रतनावली
निज पिय पाट पुरान
जथासमय जिन दै करहु
करमचारि सनमान ॥९७॥१५८॥

पाट (पट) = वस्त्र । करमचारि (कर्मचारी) = दास ।

रत्नावली कहती है कि अपने पति के पुराने कपड़ों को धुलवाकर रक्खा करो । उन्हें यथासमय कर्मचारियों—दास-दासियों—को देकर उनका सम्मान करो ।

१—×।

जे न लाभ अनुसार जन
मितव्यय करहिं विचारि
ते पाछेँ पछितात अति
रतन रंकता धारि ॥१००॥१५९॥

रंकता = दरिद्रता, ग़रीबी । पछितात (पश्चात्तपति) = पीछे दुःख उठाता है ।

रत्नावली कहती है कि जो आदमी आमदनी के अनुसार विचार-कर ठीक-ठीक ख़र्च नहीं करते, वे पीछे दरिद्री होकर बहुत पछताते हैं ।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ;
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।

१—पाछे ।

एकु हि जगदाधार तिमि
एकु हि तिय भरतार
वचन सुजन को एकु ही
रतन एक जग सार॥१०८॥१६०

रत्नावली कहती है कि जगत् के आधार जिस प्रकार एक परमात्मा हैं, उसी प्रकार पत्नी का भी भर्ता एक ही होता है। सज्जन का वचन भी एक ही होता है (अर्थात् सज्जन कहकर मुकरता नहीं)। ये तीनो (ईश्वर, पति और वचन) एक एक ही संसार में उत्तम हैं।[1]

धर्मशास्त्र—

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ;
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ।

1—× ।

जो तिय संतति काज उर
अहित धरहिं परकीय
ते न लहहिं संतति रतन
कोटिजनम लगि तीय॥११३॥१६१॥

संतति = संतान। काज = निमित्त। परकीय = दूसरे का।

रत्नावली कहती है कि जो स्त्रियाँ संतान की कामना से हृदय में दूसरों का अनिष्ट चिंतन करती हैं (अर्थात् टोटके के लिये प्राणिवधादिक निंद्य कर्म करती हैं), वे करोड़ों जन्मों तक संतान को प्राप्त नहीं करतीं।

१—लहहि।

वार वधू रथ चढि चलै
धारि रतन सिंगार
पैदर दीन सती सरिस
होइ न महिमागार ॥११४॥१६२॥

वारवधू=वेश्या। महिमागार (महिमा+आगार) बड़ाई का स्थान।

रत्नावली कहती है कि वेश्या यदि रत्नों से जटित आभूषणों से शृंगार करके और रथ पर चढ़कर चले, तो भी एक दीन, पैदल चलनेवाली पतिव्रता के समान महिमावाली नहीं हो सकती।

१—वारवधू, चलइ।

अनाचार धन नास रत
निज पति रतन लपाइ
लहि औसर समुचित वचन
रहसि बोधिये ताइ ॥१२३॥१६३॥

अनाचार (नञ् (अन्)+आचार)। नास=नाश। रत=तत्पर। औसर=अवसर, समय। रहसि=एकांत में।

रत्नावली कहती है कि अपने पति को दुराचार और अपव्यय में लीन देखकर अवसर पाकर एकांत में उचित शब्दों से उसे समझाओ।

१—लपाहि, बोधिए, ताहि।

देति मंत्र सुठि मीत सम
नेहिनि मातु समान
सेवति पति दासी सरिस
रतन सुतिय धनि जान ॥ १२७॥१६४॥

मंत्र=सम्मति, सलाह। मीत=मित्र। नेहिनि=स्नेहिनी, स्नेह करनेवाली।

रत्नावली कहती है कि उस साध्वी को धन्य समझो, जो मित्र के समान पति को अच्छी सलाह देती है, माता के समान स्नेह करती है, और दासी के समान सेवा करती है।

१—×

रतन देह पति को भयो
तोहि कहा अधिकार
पति समुहें पाछें रतन
रहि पति चित अनुसार ॥१२८॥१६५॥

समुहें=सम्मुख। कहा=क्या।

रत्नावली कहती है कि हे स्त्री, यह शरीर तो पति का हो चुका। अब इसे (परकीय बनाने में) तेरा क्या अधिकार है? पति के सामने और उसके पीछे भी तू अपने पति के चित्त के अनुसार रह। इस पद्य से विधवा-विवाह का खंडन होता है।

१—पति को, भयो।

सुर भूसुर ईसुर रतन
साषी सुजन समाज
पतिहि वचन दीने सुमिरि
पालि धारि उर लाज ॥१३९॥१६६॥

सुर = देवता। भूसुर = भूमि के देवता, ब्राह्मण। ईसुर = ईश्वर। साखो = साक्षी, गवाह।

रत्नावली कहती है कि देवता, ब्राह्मण, ईश्वर और सज्जनों के समुदाय के समक्ष तुमने विवाह के समय पति को अनेक वचन दिए थे। उन्हें स्मरण करके और हृदय में (उनके उल्लंघन होने की) लज्जा धारण करके उनका (सदा) पालन करती रहो।

१—×।

वचन हेत हरिचंद नृप
भये सुपच के दास
वचन हेत दसरथ दयो
रतन सुतहि बनवास ॥१४०॥१६७॥

सुपच = श्वपच, कुत्ते का मांस पकानेवाला, चांडाल।

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये ही महाराज हरिश्चंद्र चांडाल के दास बने थे। रत्नावली कहती है कि अपने वचन की रक्षा के लिये ही महाराज दशरथ ने अपने पुत्र को वनवास दिया था।

पुत्र प्रान ते अधिक है ते दसरथ नृप परिहरे बचन न दीन्हो जान	इत्यादि कुंडलियाँ

१—भए, स्वपच, वनवास।

वचन हेत भीपम करयों
गुरु सों समर महान
वचन हेत नृप बलि द्यो
परवहि सरवस दान ॥१४१॥११॥

सरवस = सर्वस्व । भीपम = भीष्म । परव = खर्व, बौना अर्थात् वामनावतार ।

[आजन्म कुमार रहने की प्रतिज्ञा करनेवाले देवव्रत भीष्म से, अंबा के अनुरोध के कारण, उनके गुरु परशुरामजी ने अंबा के साथ विवाह करने के लिये कहा था, और अपनी आज्ञा के उल्लंघन होने पर उन्हें युद्ध के लिये ललकारा था] अपनी प्रतिज्ञा के पालन के निमित्त भीष्म ने अपने गुरुदेव परशुरामजी से भयंकर युद्ध ठान लिया था। इसी प्रकार अपने वचन के पालने के लिये राजा बलि ने भी वामन भगवान् को सर्वस्व समर्पण कर दिया था।

१—करयो, गुरु सों।

वचन आपनो सत्य करि
रतन न अनिरत भाँपि
अनृत भाँपिवो पाप पुनि
उठति लोक सों सापि ॥१४२॥१६६॥

अनिरत = अनृत,झूठ । सापि = विश्वास । साख = साक्षी।

रत्नावली कहती है कि अपने वचन को सच्चा करो, झूठ मत बोलो। झूठ बोलना पाप है, और झूठे
दुनिया में, जाता रहता है।

१—भापि, भापिवो।

सुजन[1] वचन सरिता समय
रतन बान अरु प्रान
गति गहि जे नहिं बाहुरत
तुपक गुटी परिमान ॥ १४४ ॥ १७० ॥

गति गहि=चलकर, छूटकर। बाहुरत=लौटकर आता है। जे=ये। तुपक=छोटी तोप, बंदूक़ (तुर्की)। गुटी=गोली।

रत्नावली कहती है कि सज्जन का वचन, नदी, समय, बाण, प्राण और बंदूक़ की गोली, ये चीज़ें जब एक बार निकल जाती हैं, तब फिर लौटकर नहीं आतीं, इसे सत्य समझो।

१—अह।

पतिहि कुदीठि न लपि रतन
जनि दुरवचन उचारि
पति सों रूठि न रोप करि
तिय निजधरम सम्हारि ॥१४५॥१७१॥

कुदीठि=कुदृष्टि (बुरी नज़र)। रूठि=रुष्ट होना, रूठना।

रत्नावली कहती है कि पति को कुदृष्टि से न देखो, और न उससे कुवाक्य (बुरे वचन) बोलो। अपने कर्तव्य का स्मरण करके न उससे रूठो और न उस पर कोप ही करो।

१—रुठि, रोस।

नर अधार बिनु नारि तिमि
जिमि स्वर बिनु हल होत
करनधार बिनु उदधि जिमि
रतनावलि गति पोत ॥ १४६ ॥१७२॥

अधार = आधार, आश्रय। स्वर = अ, आ आदि। हल = क्, र् आदि। करनधार = कर्णधार, जहाज चलानेवाला। उदधि = समुद्र। पोत = जहाज।

रत्नावली कहती है कि पति रूपी आधार के बिना पत्नी की वही दशा होती है, जो स्वरों के बिना व्यंजनों की होती है, और समुद्र में बिना नाविक के जहाज़ की होती है। (स्वर के बिना व्यंजन वर्णों का उच्चारण कठिन है)।

१—इस पाठ में 'गति' शब्द भूल से रह गया है।

सुजस जासु जौलौं जगत
तौलौं जीवत सोय
मारे हू मरत न रतन
अजस लहत मृत होय ॥१४८॥१७३॥

सुजस = सुंदर यश। सोय = सो, वह।

रत्नावली कहती है कि जिसका यश पृथ्वी पर जब तक रहता है, वह तभी तक जीवित है (ऐसा समझना चाहिए)। यशस्वी पुरुष को यदि मार दिया जाय, तब भी वह अपने यश-रूपीश रीर से जीवित रहता है। अपकीर्ति को पानेवाला व्यक्ति (जीवित दशा में भी) मरा हुआ होता है (ऐसा समझना चाहिए)।

१—सोइ, होइ।

मैन नैन रसना रतन
करन नासिका साँच
एकहि मारत अवस ह्वै
स्ववस जियावत पाँच ॥१५१॥१७४॥

मैन=मदन, काम। काम की इंद्रिय त्वचा है, जिसके विषय (स्पर्श) का लोभी हाथी होता है। नैन=नयन, आँख। नेत्र के विषय (रूप) का लोभी पतंगा होता है। रसना=जिह्वा, जीभ। इस इंद्रिय के विषय (रस) का लोभी मीन होता है। करन=कर्ण, कान। इसके विषय (शब्द) का लोभी मृग होता है। नासिका=नाक। इसके विषय (गंध) का लोभी भ्रमर होता है।

शब्द का अनुभव करनेवाली कर्णेंद्रिय, स्पर्श का अनुभव करनेवाली मदनेंद्रिय अर्थात् त्वचा, रूप का अनुभव करनेवाली नयनेंद्रिय, रस का अनुभव करनेवाली रसनेंद्रिय, गंध का अनुभव करनेवाली घ्राणेंद्रिय, इस प्रकार पाँच इंद्रियाँ होती हैं। इनमें से एक भी यदि वश में न रहे, तो घातक होती है। जब पाँचों अपने वश में रहती हैं, तभी जीवनदायिनी होती हैं—मोक्ष-साधिका होती हैं।

१—साच, जिआवत।

रतन करहु उपकार पर
चहहु न प्रति उपकार
लहहिं न बदलो साधु जन
बदलो लघु व्योहार ॥१५२॥१७५॥

पर उपकार = दूसरे के साथ भलाई। प्रत्युपकार = बदले में भलाई।

रत्नावली कहती है कि दूसरों की भलाई तो करो, परंतु उपकृत व्यक्ति से प्रत्युपकार मत चाहो। सज्जन उपकार का बदला नहीं चाहते। उपकार का बदला चाहना तुच्छ बात है।

१—×।

परहित जीवन जासु जग
रतन सफल है सोइ
निज हित कूकर काक कपि
जीवहिं का फल होइ ॥१५३॥१७६॥

कूकर = कुत्ता। काक = कौआ। कपि = बंदर।

रत्नावली कहती है कि जगत् में उसी का जीवित रहना सफल है, जिसका जीवन परोपकार के लिये होता है। अपने लिये तो कुत्ते, कौए और बंदर भी जीते हैं। (ऐसे स्वार्थमय पशु समान) जीवन से क्या लाभ ?

१—×।

जे निज जे पर भेद इमि
लघु जन करत विचार
चरित उदारन को रतन
सकल जगत परिवार ॥१५५॥१७७॥

चरित उदारन को = उनको जिनका आचरण परोपकारमय है।
यह अपना है, और यह पराया है। इस प्रकार का विचार तुच्छ

व्यक्ति किया करते हैं। रत्नावली कहती है कि उदार चरित्रवाले तो सारी पृथ्वी को ही अपना कुटुंब समझते हैं।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्;
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

१—×।

अस करनी करि तू रतन
सुजन सराहैं तोइ
तुम जीवन लखि मुद लहैं
मरैं करैं सुधि रोइ ॥१५६॥१७८॥

अस = ऐसी। मुद = प्रसन्नता।

रत्नावली कहती है कि तू ऐसे काम कर, जिससे भले आदमी तेरी प्रशंसा करें, तेरे जीवन को देखकर प्रसन्न हों, और तेरी मृत्यु के अनंतर रो-रोकर तेरी याद करें।

१—तुव जीवन लखि, लहहिं, मरें करें सुध रोइ।

सोइ सनेही जो रतन
करहिं विपति में नेह
सुख संपति लखि जन बहुरि
बनें नेह के गेह ॥१५७॥१७९॥

नेह (स्नेह) = प्रेम। बहुरि = फिर, तो।

रत्नावली कहती है कि (सच्चे) मित्र वे ही हैं, जो संकट के समय में भी स्नेह रखते हैं। सुख और संपत्ति को देखकर तो अनेक व्यक्ति प्रेम प्रकट करने लगते हैं।

१—जे, बहुत बनहिं।

विपति परे जे जन रतन
निबहैं प्रीति पुरान
हित् मीत सति भाय ते
पै न बहुत जिय जानि ॥१५८॥१८०॥

बहुरि = फिर। विपति = विपत्ति। पुरान = पुरानी।

रत्नावली कहती है कि आपत्ति पड़ने पर जो लोग पुराने प्रेम का निर्वाह करते हैं, वे ही हितकारी सद्भाव वाले मित्र हैं; परंतु ऐसे हितकारी मित्र बहुत नहीं होते।

१—निवहैं, पुरानि, बहुत।

रतन भाव भरि भूरि जिमि
कवि पद भरत समास
तिमि उचरहु लघु पद करहि
अरथ गभीर विकास ॥१६२॥१८१॥

भाव = आशय। समास = संक्षेप। अरथ = अर्थ। समास = अव्ययीभाव कर्मधारय आदि; संक्षेप। गभीर = गंभीर।

रत्नावली कहती है कि जिस प्रकार कवि लोग बहुत-सा भाव भरकर समासवाले (अथवा संक्षिप्त) पदों का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार तुम भी छोटे-छोटे पदों का उच्चारण करके गंभीर अर्थ का विकास करो।

१ गभीर।

पर हित करि बरनत न बुध
गुपत रपहिं दै दान
पर उपकृति सुमिरत रतन
करत न निज गुन गान ॥१६३॥१८२॥

गुपत=गुप्त। रपहिं=रखहिं, रखते हैं। उपकृत=उपकृति, भलाई।

रत्नावली कहती है कि बुद्धिमान् पुरुष परोपकार करके अपने मुँह से उसका वर्णन नहीं करते, दान देकर उसे गुप्त रखते हैं, दूसरे के किए हुए उपकार को याद रखते हैं, और अपनी बड़ाई आप नहीं करते।

१—बुध।

भलें होइ दुरजन गुनी
भली न तासौं प्रीति
विषधर मिधर हू रतन
डसत करत जिमि भीति॥१६४॥१८३॥

भीति=भय। दुरजन (दुर्जन)=खोटा मनुष्य। विषधर=सर्प।

रत्नावली कहती है कि दुर्जन पुरुष गुणवान् भी हों, तो भी उनके साथ प्रेम करना अच्छा नहीं। जैसे, मणि को धारण करनेवाला भी विषैला नाग डस लेता है, और भय उत्पन्न करता है। [वैसे ही दुष्ट जन गुणवान् होकर भी भयोत्पादक होता है।]

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्;
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।

१—भलहि, तासौं विषधर।

भल इकिलो रहिबो रतन
भलो न खल सहवास
जिमि तरु दीमक संग लहै
आपन रूप विनास ॥१६५॥१८४॥

भल = भला अच्छा। सहवास = साथ रहना। खल = खल, दुष्ट। दीमक = चींटी की तरह एक छोटा सफ़ेद कीड़ा। संग = सँग (पढ़ने में)।

रत्नावली कहती है, अकेला रहना अच्छा, पर दुष्टों के साथ रहना अच्छा नहीं। (दुष्टों के साथ हानि इस प्रकार होती है) जैसे दीमक के संग से वृक्ष अपना नाश कर लेता है।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ;
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ।

१—रूप।

रतन बाँझ रहियो भलौ
भलें न सौउ कपूत
बाँझ रहे तिय एक दुख
पाइ कपूत अकूत ॥१६६॥१८५॥

कपूत = कुपुत्र बुरा बेटा। अकूत = असंख्य, कूत अर्थात् परिमाण से रहित।

रत्नावली कहती है कि सौ कुपुत्रों के उत्पन्न होने से तो एक भी पुत्र का उत्पन्न न होना अच्छा है। वंध्या रहने से केवल एक ही दुःख रहता है (कि हाय! मेरे कोई बालक नहीं हुआ), किंतु कुपुत्र के कारण इतने दु:ख उठाने पड़ते हैं कि उनकी संख्या करना कठिन है।

नीति—अजातमृतमूर्खाणां वरावाद्यौ न चान्तिमः ;
सकृद्-दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे ।

१—बाँझ, भलो, बाँझ, रहे।

कुल के एक सपूत सों
सकल सपूती नारि
रतन एक ही चंद जिमि
करत जगत उजियारि ॥१६७॥१८६॥

चंद = चंद्र। उजियारि = प्रकाश।

रत्नावली कहती है कि वंश में एक भी सुपुत्र के जन्म से उस वंश की सारी स्त्रियाँ (मानो) पुत्रवती हो जाती हैं, जैसे एक ही चंद्रमा से सारे जगत् में उजाला हो जाता है।

नीति—

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन भासते ;
कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेणेव हि शर्वरी।

१—सपूती, एकहौ।

बालहि लालहु अस रतन
जो न औगुनी होइ
दिन दिन गुनगुरुता गहै
सांचो लालन सोइ ॥१६८॥१८७॥

औगुनी = अवगुणी, बुराईवाला। गुनगुरुता = गुणों का बड़प्पन।

रत्नावली कहती है कि बच्चे का लालन-पालन इस प्रकार करो कि वह अवगुणी न बन जाय। सच्चा लालन-पालन वही है कि सदा नित्य अधिकाधिक गुणों को ग्रहण करता रहे।

१—बालहि, सौंचो।

बालहि सीष सिपाइ अस
लषि लषि लोग सिहांय
आसिष दें हरषें रतन
नेह करें पुलकाय ॥१६६॥१८८॥

पुलकाय = रोमांच-युक्त हो जायँ ।

रत्नावली कहती है कि बच्चे को ऐसी शिक्षा दो कि लोग उसे देख-देखकर सराहें, प्रसन्न हों, आशीर्वाद दें, और रोमांचित होकर उस पर स्नेह करें ।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते
कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम् ;
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ।

१—सिपाइ, सिहांय, पुलकाय ।

रतन जनक धन रिन उरिन
बहु जग जन गन होइ
पै जननी रिन सों उरिन
होइ विरल जन कोइ ॥१८०॥१८६॥

उरिन = क़र्ज़ बेबाक़ करनेवाला । विरल = थोड़ा, कोई-कोई ।

रत्नावली कहती है कि इस संसार में बहुत-से आदमी पिता के (उपकार-रूपी) धन के ऋण से अथवा पिता के लिये हुए रुपए के क़र्ज़ से और धन के ऋण से उन्मुक्त हो जाते हैं, परंतु माता के (उपकारों के) ऋण से तो कोई विरला ही उऋण होता है ।

१—× ।

तन धन जन बल रूप को
गरब करौ जनि कोय
को जानै विधि गति रतन
छन में कछु कछु होय ॥१८१॥१९०॥

छन = क्षण, पल। को (कः) = कौन।

रत्नावली कहती है कि किसी को शरीर, धन, नातेदार, बल और रूप का अभिमान नहीं करना चाहिए। विधाता की गति को कौन जान सकता है। एक मिनट में ही कुछ का कुछ हो जाता है।

१—बल, रूप, कोइ, जानैं, महं, होइ।

सवरन स्वर लघु द्वै मिलत
दीरघ रूप लखात
रतनावलि असवरन द्वै
मिलि निज रूप नसात ॥१८३॥१९१॥

सवरन = सवर्ण जैसे अ, आ अथवा इ, ई। असवरन = असवर्ण यथा अ, इ, अथवा अ, उ।

दो सवर्ण स्वरों के मिलने से उनका दीर्घ रूप दिखाई देता है (जैसे हिम+आलय = हिमालय), किंतु असवर्ण स्वरों के मेल से उनका रूप नष्ट हो जाता है (जैसे यदि+अपि = यद्यपि, सत्+शास्त्र = सच्छास्त्र)।

इससे शिक्षा मिलती है कि विवाह सवर्णों का ही श्रेयस्कर है।
अकः सवर्णे दीर्घः। इको यणचि। (पाणिनि)
१—रूप, रुप।

समं सों बाढ़त देह बल
सुप संपति धन कोप
बिनु स्रम बाढ़त रोग तन
रतन दरिद दुप दोप ॥१८४॥१६२॥

स्रम = श्रम। दरिद = दारिद्र्य। बिनु = बिना।

रत्नावली कहती है कि (शारीरिक) परिश्रम करने से शारीरिक शक्ति बढ़ती है, तत्पश्चात् सुख मिलता है, धन-दौलत और ख़ज़ाना बढ़ता है। बिना परिश्रम के शरीर में रोग हो जाते हैं, और (धनोपार्जन की शक्ति न रहने के कारण) दरिद्रता, दुःख और दोष उत्पन्न होते हैं।

स्रम ही सों सब मिलत है, बिनु स्रम मिलै न काहि।
* * *
सीधी आँगुरि घी जम्यो क्यों हू निकसै नाहि।
१—बाढ़त, कोस, बाढ़त, दोस।

जो जाको करतब सहज
रतन करि सकै सोय
बाबा उचरतु ओठ सों
हाहा गल सों होय ॥१८५॥१६३॥

करतव (कर्त्तव्य)=काम । सहज=स्वाभाविक । ओठ (ओष्ठ)=होंठ ।

रत्नावली कहती है कि जिसका जो स्वाभाविक कार्य है, वही उस काम को कर सकता है। होठों से प, फ, ब, भ, म का उच्चारण होता है, तो गले से हकार आदिक कंठ्य वर्णों का ।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । अकुहविसर्जनीयानां कंठः ।

१—करतव, सोइ, ओठही, होइ ।

जे उपकारी को रतन
करत मूढ अपकार
ते लग अपजस लहत पुनि
मरें नरक अधिकार ॥१६७॥१६४॥

ते=वे । लहत (लभते)=पाते हैं । अपजस (अपयश)=बदनामी ।

रत्नावली कहती है कि जो मूर्ख अपने साथ भलाई करनेवाले के साथ बुरा बर्ताव करते हैं, वे संसार में अपयश (बदनामी) पाते हैं, और फिर मृत्यु के अनंतर नरक में पड़ते हैं ।

१—जो ।

रतनावलि करतव समुझि
सेइ पतिहि निषकाम
तप तीरथ व्रत फल सकल
लहै बैठि घर बाम ॥१६४॥१६५॥

निपकाम (निष्कामम्)=फल की ओर दृष्टि न रखकर।
वाम (वामा)=स्त्री।

रत्नावली कहती है कि अपना कर्तव्य समझकर पति की सेवा को निष्काम भाव से करती रहो। (पति-सेवा के प्रभाव से) स्त्री को घर बैठे ही तपस्या, तीर्थ यात्रा और व्रत करने का सारा फल मिल जाता है।

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत्।

१—करतव, लहहि।

पति बरतत जेहि वस्तु नित
तेहि धरि रतन सम्हारि
समय समय नित दै पियहि
आलस मदहि विसारि ॥१६५॥१६६॥

मद=अभिमान, प्रमाद। विसारि=त्यागकर।

रत्नावली कहती है कि पति जिस वस्तु को नित्य काम में लाते हैं, उसे सँभालकर रक्खो। आलस्य और अभिमान को छोड़कर नित्य यथासमय पति को वह वस्तु दे दिया करो।

१—सम्हारि।

बिरध सतिनु ढिंग बैठि तिय
तेहि अनुभौ धरि ध्यान
तेहि अनुसारहि बरति तेहि
रापि रतन सनमान ॥१६६॥१६७॥

१ बिरध (वृद्धा) = बुड्ढी। ढिग = निकट। अनुभौ = अनुभव। सनमान = सम्मान।

रत्नावली कहती है कि वृद्धा पतिव्रताओं के पास बैठकर उनके अनुभव को ध्यान में रखकर उनके अनुसार आचरण करो, और उनका सम्मान करो।

१—बैठि, बरति।

पुन्य धरम हित नित पतिहि
रहि बढाय उतसाह
ताहि पुन्य निज गुनि रतन
पुन्य करत जो नाह ॥१६७॥१६८॥

उतसाह (उत्साह) = हौसला। नाह (नाथ) = पति। पुन्य = पवित्र कृत्य। बढाय = बढ़ाय, बढ़ाकर।

रत्नावली कहती है कि पुण्य-धर्म और हितकारी कार्य करने में नित्य पति का उत्साह बढाती रहो। तुम्हारे पति जो पुण्य करते हैं, उसी को अपना पुण्य समझो।

१—बढाय।

तुव पिय नित नित हरि भजत
तू तिय सेवति ताहि
तासु भजन तिय तुव भजन
रतन न मनहि भ्रमाइ ॥१६८॥१६६॥

तुव (तव) = तेरा। तासु (तस्य) = उसका। भ्रमाइ (भ्रम्यताम्) = चक्कर में या भ्रम में पड़।

रत्नावली कहती है कि हे स्त्री, तेरे पतिदेव नित्य ही भगवान् का भजन करते हैं, और तू उनकी सेवा करती है। अतः उनका भजन (ईश्वर-सेवन) ही तेरा भजन है। तू अपने मन में भ्रम मत कर (कि बिना मेरे भगवद्भजन किए मेरा उद्धार कैसे होगा)। स्त्री अपने पति से अपने को पृथक् न समझे। पति द्वारा किया हुआ पुण्य, धर्म, भगवद्भजन आदि सभी कर्मों में स्त्री का स्वत्व है। स्त्री उसको अपना ही समझे।

१—ताहि, जासु, प्रभाहि।

सती धरम धरि जाचि नित
हरि सों पति कुसलात
जनम जनम तुव तिय रतन
अचल रहै अहिवात ॥१९९॥२००॥

जाचि (याचस्व)=माँग। कुसलात=क्षेम, मंगल। अहिवात (अभिवाद)=सौभाग्य।

रत्नावली कहती है कि पतिव्रताओं के धर्म को धारण कर नित्य ही भगवान् से अपने पति की कुशल मनाओ। (ऐसा करने से) हे स्त्री, जन्म-जन्मान्तरों में भी तेरा सौभाग्य अखंड बना [illegible]।

१—जाँचि, रहहि।

जो तिय मन वच काय सों
पिय सेवति
तेहि चरननु की धूरि
रतनावली [illegible]

सिहाति प्रसन्न होती है। हुलसाति=प्रसन्न होती है।

रत्नावली कहती है कि मैं उन स्त्रियों के चरणों की धूल को (सिर पर) धारण कर प्रसन्न होती हूँ, जो मन से, वाणी से और शरीर से पति की सेवा प्रसन्नता-पूर्वक करती हैं।

१—×।

इति श्रीसाधवी रतनावलि की दोहा-रतनावली संपूरनम्
शुभम् संवत् १८२६ भादौ शुदि २ चन्द्रे लिपितम्
गगाधर ब्राह्मण जोगमारग समीपे वाराह-
क्षेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु।

इतिश्री रतनावलि कृत दोहा रतनावली संपूर्णा ॥ संवत् १८२४ ॥
भाद्रपद मासे कृष्ण पक्षे ३० अमावस्यां सोमवासरे ॥
लिपितं गोपालदासेन मुशी माधौराइ निमित्तम् ॥
शुभ भवतु ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥
राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजम्
मंगलं पुंडरीकाक्ष मंगलायतनो हरिः ॥१॥ शुभम् ॥

سا کن این کتاب منشی مادھورائے کایستھ سکسینه
ساکن شھر بدایون

टिप्पणी

इस संग्रह के सभी दोहों का पाठ श्रीगंगाधर ब्राह्मण के अनुसार है। पाठांतरों में पहले दोहे से लेकर १११ वें दोहे तक तीन पाठांतर हैं, जिनमें से पहला प० रामचंद्र के, द्वितीय ईश्वरनाथ पंडित के और तृतीय श्रीगोपालदास के अनुसार है। ११२वें दोहे से अंत तक केवल एक ही पाठांतर है, जो श्रीगोपालदास के अनुसार है।

रत्नावली-कृत दोहों के

समानार्थक वचन

(दोहों की क्रम-संख्या २०१ दोहेवाली 'दोहा-रत्नावली' के अनुसार है)

दोहा ५ उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन ;
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः।

६ विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।
(अ) गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ;
सानुकूल्ये पुनस्तस्मिन् दोषोऽपि च गुणायते।

७ अचिंतितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखान्यपि तथा मन्ये दैवमत्रातिरिच्यते।
(अ) अयाचितः सुखं दत्ते याचितश्च न यच्छति ;
सर्वं तस्यापि हरति विधिरुच्छृङ्खलो नृणाम्।
(आ) यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति ;
इत्थं विधेर्विधिविपर्ययमाकलय्य
सन्तः सदा सुरसरित्तटमाश्रयन्ते।

२४ काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम् ;
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।

२६ दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णम्।

३९ एते वै विधिना प्रोक्ताः स्त्रीणां धर्माःसनातनाः ;
ते नौकाः परमाः प्रोक्ता भवसंतारतारणे ।
४० गंधैर्माल्यैस्तथा धूपैर्विविधैर्भूषणैरपि ;
वासोभिः शयनैश्चैव विधवा किं करिष्यति ।
४६ पतिर्देवो हि नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः ;
पत्युर्गतिसमा नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ।
४७ आर्त्तार्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा ;
मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ।
(अ) यद्यप्येष भवेद्भर्त्ता अनार्यो वृत्तवर्जितः ;
अद्वैधमुपवर्तव्यः तथा ह्येष मया भवेत् ।
(आ) विप्राः प्राहुस्तथा चेतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ।
४९ अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम् ;
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलवधूसिद्धान्तधर्मागमः ।
५० क्रीडाशरीरसंस्कारसमाजोत्सवदर्शनम् ;
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ।
५१ विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः सदा भर्त्ता सतत देववत् पतिः ;
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ।
(आ) दरिद्रो व्यसनी वृद्धो व्याधितो विकलस्तथा ;
पतितः कृपणो वाऽपि स्त्रीणां भर्त्ता परा गतिः ।
५२ दुर्वृत्तं वा सुवृत्तं वा सर्वपापरतं तथा ;
भर्त्तारं तारयत्येषा भार्या धर्मेषु निष्ठिता ।
५३ ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः ;
पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृताऽपि वा ।

(अ) नगरस्थो वनस्थो वा पापी वा यदि वा शुभः ;
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः।

५४ वनेऽपि सिंहा मृगमांसभक्षिणो
बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति ;
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता
न नीचकर्माणि समाचरन्ति।

५५ संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ;
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्।
आपत्स्वेव हि महतां शक्तिरभिव्यज्यते न संपत्सु ;
अगुरोस्तथा न गन्धः प्रागस्ति यथाऽग्निपतितस्य।

५६ आरोप्यते शिला शैले यत्नेन महता यथा ;
निपात्यते क्षणेनाऽधस्तथाऽऽत्मा गुणदोषयोः।

५८ यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।

६१ कर्णायधिव्याहृतम्। .... पदस्य सावधिप्रेक्षितम्।

(अ) अजीर्णमलयद्वामा भवेच्च विभवे सति।

६३ आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमौषधमैथुने ;
दानं मानापमानौ च नव गोप्यानि कारयेत्।
अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ;
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्।

६४ शीलं रक्षतु मेधावी प्राप्तुमिच्छुः सुखत्रयम् ;
प्रशंसां वित्तलाभं च प्रेत्य स्वर्गे च मोदनम्।

६५ सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्।

(अ) व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्।

(आ) क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।

६८ इच्छेच्चेद् विपुलां मैत्रीं त्रीणि तत्र न कारयेत् ;
वाग्वादमर्थसंबंधं तत्पत्नीपरिभाषणम्।

७० द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षेण निरीक्षणम् ;
असत्प्रलापो हास्यञ्च दूषणं कुलयोषिताम् ।
७१ पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ;
स्वप्नोऽन्यगेहे वासश्च नारीणां दूषणानि षट् ।
७२ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ;
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।
वर्जयेदिन्द्रियजयी निर्जने जननीमपि ;
पुत्रीकृतोऽपि प्रद्युम्नः कामितः शम्बरस्त्रिया ।
७४ द्यूतं पुस्तकवार्द्धं च नाटकेषु च सक्तता ;
स्त्रियस्तन्द्रा च निद्रा च विद्याछिन्नकराणि षट् ।
७५ विवादशीलां स्वयमर्थचोरिणीं
परानुकूलां परपाकशालिनीं ;
सक्रोधनीं चान्यगृहेषु वासिनीं
त्यजन्ति भार्यां दशपुत्रमातरम् ।
७६ वर्जनीयो मतिमता दुर्जनः सख्यवैरयोः ;
श्वा भवत्यपकाराय लिहन्नपि दशन्नपि ।
दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ;
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ।
७७ सकृदपि कुलटाभिर्योगिनीभिक्षुकीभिः
नटविटघटिताभिः संसृजेन्मौलिकाभिः ।
७८ अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
(अ) यस्य न ज्ञायते शीलं कुलं विद्या नरस्य च ;
कस्तेन सह विश्वासं पुमान्कुर्याद्विचक्षणः ।
८० प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वचनं चातिमानिताम् ;
पैशुन्यहिंसाविद्वेषमहाहंकारधूर्त्तताम् ;
नास्तिक्यं साहसं स्तेयं दंभान् सध्वी विवर्जयेत् ।

८१ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदांपदम्।
८३ आलस्यं कार्यनाशाय, ज्वरनाशाय लङ्घनम्।
(अ) आलस्य यदि न भवेज्जगत्यनर्थः
को न स्याद्बहुधनिको बहुश्रुतो वा।
(आ) आलस्यादवनिरियं ससागरान्ता
सम्पूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च।
(इ) न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति;
अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान्।
८४ कल्योत्थानपरा नित्यं गुरुशुश्रूषणे रता;
सुसम्मृष्टगृहा चैव गोशकृत्कृतलेपना।
८५ धी श्रीस्त्रीम्।
(अ) त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा;
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु
प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः;
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।
८७-८८ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ तोषयन्ती पतिव्रता;
मातृपितृपरा नित्यं या नारी सा पतिव्रता।
८६ गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभि-
स्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्;
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां
न जातु मौलौ मणयो वसन्ति।
६२ मातृवत् स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ये;
परदारान् प्रपश्यन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः।
६३ भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु करुणा श्वश्रूषु नम्रं शिरः।

९४ प्रीतिर्यातृषु गौरवं गुरुजने क्षान्तिः कनाशाम्यपि ।
९५ अम्लाना कुलयोषितां व्रतविधिः सोऽयं विधेयः पुनः
मद्भर्तुर्दयिता इति प्रियसखी बुद्धिः सपत्नीष्वपि ।
९६ निर्व्याजा दयिते ननान्दृषु नता श्वश्रूषु भक्ता भव
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीजने ;
भर्तुर्मित्रजने सनम्रवचना खिन्ना च तद्वैरिषु
प्रायः संवननं नतभ्रु तदिदं वीतौषधं भर्तृषु ।
९७ प्रियतमपरिमुक्तत्यक्तवस्त्रादिकानाम् ;
शुचिभिरवसरे तैर्मोचनं भृत्यवर्गे ।
(ख) तज्जघन्यानां च जीर्णवाससां संचयस्तैर्विविध-
रागैः शुद्धैर्वा कृतकर्मणां परिचारकाणामनुग्रहो
मानार्थेषु च दानमन्यत्र वोपयोगः ।
९८-९९ पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ;
उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् ।
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशालं स्वमङ्गलम् ;
मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्पुनः ।
न चापि व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ;
सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ;
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।
१०० क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययानश्च स्ववाञ्छया ;
परिक्षीयेत एवाऽसौ धनी वैश्रवणोपमः ।
१०१ इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता ;
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः ।
आयाच्चार्धं व्ययं कुर्यात् तृतीयं चार्धमेव वा ;
सर्वलोपं न कुर्वीत यदि जीवितुमिच्छति ।
व्ययमवहितचित्ता चिन्तिताऽऽयं च कुर्यात् ।

१०२ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने;
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतंत्रताम्।
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने;
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

१०३ पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः;
एषा हि विरहेण स्त्री गर्ह्यं कुर्यादुभे कुले।

१०४ अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे;
पावको लोहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते।

१०५ भिक्षुकीश्रमणक्षपणाकुलटाकुहकेक्षणिकामूलकारिकाभि-र्न संसृज्येत।

१०६ दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि च;
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी।

१०७ पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते;
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते।
अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्;
जुगुप्सितं च सर्वत्रमौपपत्यं कुलस्त्रियः।

१०८ न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्त्तोपदिश्यते।

(अ) साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुतिस्थिते;
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते।

(आ) लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्व-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्;
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्।

१०९ व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्;
शृगालयोनिं चाऽऽप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते।

१११ घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान् ;
तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः ।

११२ अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ;
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ।

११४ निरक्षरे वीक्ष्य महाधनत्वं विद्यानवद्या विदुषा न देया ;
रत्नावतंसाः कुलटाः समीक्ष्य किमार्यनार्यः कुलटा भवन्ति ।

११५ इभतुरगशतैः प्रयान्ति मूढा
धनरहिता विबुधाः प्रयांति पद्भ्याम् ;
गिरिशिखरेषु वसेच्च काकपंक्तिः
नहि समयेऽपि तथापि राजहंसः ।

११६ यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः ;
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत् ।
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य च ;
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किंचदप्रियम् ।

११७ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ;
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।

११८ पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ;
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ।

११९ भर्त्ता देवो गुरुर्भर्त्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ;
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत्सती ।
नास्ति यज्ञः स्त्रियः कश्चित् न व्रतं नोपवासकम् ;
या तु भर्त्तरि शुश्रूषा तया स्वर्गं जयत्यसौ ।

१२० आर्ये किमत्रमन्येऽहं स्त्रीणां भर्ता हि दैवतम् ।

१२३ रहसि च परिबोध्यो वित्तनाशे प्रसक्तः ।
अतिव्ययमसद्व्ययं वा कुर्वाणं रहसि बोधयेत् ।

१२४ योषिच्छुश्रूषणात् भर्त्तुः कर्मणा मनसा गिरा;
तद्धिता शुभ-माप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः।
(अ) मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति;
सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह।
१२५ पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा;
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किञ्चिदप्रियम्।
१२६ न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च,
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात्।
(अ) नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्;
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।
१२७ कामं तु क्षपयेद्देह पुष्पमूलफलाशनैः;
न तु नामाऽपि गृह्णीयात् पत्यौ प्रेते परस्य तु।
१२८ जीवति जीवति नाथे मृते मृता या मुदा युते मुदिता;
सहजस्नेहरसाला कुलवनिता केन तुल्या स्यात्।
आसीताऽऽमरणात् क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी;
यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम्।
१३० नाऽपतिः सुखमाप्नोति नारी बंधुशतैरपि,
नाऽतन्त्री विद्यते वीणा नाऽचक्री विद्यते रथः।
१३१ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः;
अमितस्य तु दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत्।
न पिता नात्मजो राम न माता न सखीजनः;
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा।
१३२ अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता;
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च।
१३३ पतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेन्द्रिया;
सेह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गति म्।

१३४ सैव साध्वी सुभक्तश्च सुस्नेहः सरसोज्ज्वलः ;
पाकः संजायते यस्याः काष्ठादप्युदरादपि ।
१३५ गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ;
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राऽभ्यागतो गुरुः ।
१३७ कार्येषु मंत्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ;
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा
१३९ पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा स्वग्निसन्निधौ ;
अनुशिष्ट जनन्या मे वाक्यं तदपि मे ध्रुवम् ।
न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैस्तैर्धर्मचारिणि ।
पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ।
१४२ सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ;
सत्येन वायवो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।
१४३ सकृदंशो . निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ;
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ।
१४४ शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः ;
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।
१४५ चिरमथ गिरमस्मिन् विप्रायां न प्रयच्छेत् ।
(अ) युवतिरपि विहाय प्रातिकूल्यं स्वनाथं ।
वचनहृदयकायैः पूजयेदिष्टदेवम् ।
१४७ नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।
प्राप्तावधिरनीनेऽपि जीवेत् सुकृतसन्ततिः ;
जीवन्त्यद्यापि मान्धातृमुखाः कार्यैर्यशोमयैः ।
मुहूर्त्तमपि जीवेच्चेन्नरः शुक्लेन कर्मणा ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ।

१४८ स जीवति यशो यस्य कीर्तिर्यस्य स जीवति ;
अयशोऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतोपमः ।

१४९ दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ;
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ।

१५० धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ;
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।

१५१ पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम् ;
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ।

१५२ इयमुन्नतसत्त्वशालिनां महतां कापि कठोरचित्तता ;
उपकृत्य भवन्ति दूरतः परतः प्रत्युपकारशंकया ।

१५३ यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवति ;
काकोऽपि किं कुरुते चञ्च्वा स्वोदरपूरणम् ।

१५४ यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै-
र्विज्ञानविक्रमयशोभिरभज्यमानम् ;
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुंक्ते ।

(अ) परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ;
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ।

१५५ अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम् ;
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

१५६ अनेन मर्त्यदेहेन यल्लोकद्वयशर्मदम् ;
विचिन्त्य तदनुष्ठेयं कर्म हेयं ततोऽन्यथा ।

१५७ मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रे यत् सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद् दुर्लभम् ;
ये चाऽन्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुलाः ।
ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् !

१५८ कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणि ;
अविचार्य प्रियं कुर्यात्तन्मित्रं मित्रमुच्यते ।
१५९ लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्रबांधवा. ;
जिह्वाग्रे बंधनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम् ।
१६० प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ;
तस्मादेव हि वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ।
नहीदृश संवनन त्रिषु लोकेषु विद्यते ;
दान मैत्री च भूतेषु दया च मधुरा च वाक् ।
१६१ कर्णिनालीकनाराचा. निर्हरन्ति शरीरत. ;
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदि शयो हि स. ।
(अ) नाक्रोशी स्यान्नातमानी परस्य मित्रद्रोही नाति नीचोपसेवी
१६२ तथ्य पथ्य सहेतुप्रियमतिमृदुलं सख्यवद्दैन्यहीनम्
साभिप्राय दुरापं सविनयमशठं चित्रमल्पाक्षरं च ।
बह्वर्थं कोपशून्य मितयुतघनदाक्षिण्यसंदेहहीनम् ;
वाक्यं ब्रूयाद्‌बुधः परिषदि समये सप्रमाणाप्रमत्तम् ।
१६३ प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधि. ;
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं नाप्युपकृते ।
१६४ दुर्जन. परिहर्त्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ;
मणिना भूषित. सर्प. किमसौ न भयंकर. ।
वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरै. सह ;
न मूर्खजनसंसर्गं सुरेन्द्रभवनेष्वपि ।
१६५ अणुरप्यसतां संग सद्‌गुणं हन्ति विस्तृतम् ;
गुणो रूपान्तरं याति तक्रयोगाद्यथा पयः ।
(अ) वरं पर्वदुर्गेषु भ्रान्तं वनचर. सह ;
न मूर्खजनसंसर्गं सुरेन्द्रभवनेष्वपि ।

(आ) सीमंतिनीं वनांताद् दशरथसूनोर्जहार दशवक्त्रः ;
बन्धनमाप समुद्रो न दुर्जनस्यान्तिके निवसेत्।

१६६ वरं वंध्या भार्या वरमपि च गर्भेषु वसतिः ;
न चाविद्वान् रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनयः।

१६७ वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि ;
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।

१६८ पात्रं न तापयति नैव मलं प्रसूते
स्नेहं न संहरति नैव गुणान् क्षिणोति ;
द्रव्यावसानसमये चलतां न धत्ते
सत्पुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दीपः।

१६९ स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे निवसतिर्यात्रोत्सवे संगतिः
गोष्ठी पुरुषसन्निधावनियमो वासो विदेशे तथा ;
संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद् वृत्तेर्निजायाः क्षतिः
पत्युर्वार्धकमीर्षितं प्रवसनं नाशस्य हेतुःस्त्रियाः।

१७० अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च ;
पुरुषविशेषं प्राप्य भवन्ति योग्या अयोग्याश्च।

१७१ कुवंशपतितो राजा मूर्खपुत्रश्च पण्डितः ,
अधनेन धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत्।

१७२ नमन्ति सफला वृक्षा नमन्ति सुजना जनाः ;
शुष्कं काष्ठं च मूर्खश्च न नमन्ति कदाचन।

१७३ जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ;
स एव हेतुर्विद्यानां धर्मस्य च धनस्य च।

१७४ दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ;
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।

१७५ तारुण्यं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ;
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।

१७६ यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सह ;
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ।
१७७ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ;
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।
१७८ यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ;
परापवादशस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ।
१७९ न चाभिमानी न च नीचवृत्तो
रूक्षां वाचं रुशतीं वर्जयीत ।
१८० उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता ;
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ।
(अ) न मातुर्दैवतं परम् ।
१८१ कालेन विश्वविजयी दशकन्धरोऽभूद्
भग्नोचलोद्धरणचञ्चलकुण्डलाभः ;
संस्कारमग्निदहनाय स एव काल-
श्चाज्ञां विना रघुपतेः प्लवगैर्निरुद्धः ।
क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ;
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु-
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥
१८२ अकः सवर्णे दीर्घः (पाणिनि ६, १, १०१)
इको यणचि (पाणिनि ६, १, ७७)
१८४ उद्योगिनः करालंबं करोति कमलालया ।
अनुद्योगिकरालंबं करोति कमलाग्रजा ।
१८५ शुकः श्लोकान् वक्तुं प्रभवति न काकः क्वचिदपि
(अ) स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।

१(अ) यो यत्र कार्ये कुशलः तं तत्र विनियोजयेत्;
कर्मस्वदृष्टकर्मा यः शास्त्रज्ञोऽपि विमुह्यति।
१८६ अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः।
१८७ नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः।
१८८ मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवन-
मुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः······सन्ति सन्तःकियन्तः।
१८९ यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता;
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।
१९० मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम्;
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
१९१ उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्;
तं जनमसत्यसंधं भगवति वसुधे कथं वहसि।
१९२ अतीवगुणसंपन्नो न जातु विनयान्वितः;
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमपेक्षते
············ये···नरास्तान् विवर्जयेत्।
१(ब) अकीर्तिं विनयो हन्ति
विद्या ददाति विनयम्
विनयाद् याति पात्रताम्।
१९४ तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत्;
शंकरादपि विष्णोर्वा पतिरेकोऽधिकः स्त्रियः।
१९५ व्यपगतमदमाया वर्तयेत्स्वं यथार्हम्।
१९६ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।
१९७-१९९ व्रतनियमविधिं च क्षेमसिद्ध्यै विदध्यात्।
२०० कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च;
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम्।

सुभाषितरत्नभांडागार, आह्निकसूत्रावली, मनुस्मृति, भर्तृहरि·

शतक, पंचतन्त्र, धर्मशास्त्रसंग्रह, पिंगलसूत्र, क्षेमेंद्रकवि-रचना, वाल्मीकि-रामायण, रविरहस्य, कामसूत्र, रघुवंश, दुर्गासप्तशती, हनुमन्नाटक, नीति, कठोपनिषद्, गीता आदि ।

लेख-विमर्श

[रत्नावली, तुलसीदास, नंददास एवं कृष्णदास से संबंध रखनेवाली और सोरों सदरिका के पक्ष अथवा तीव्र विरोध में लिखी रचनाओं का संक्षिप्त और क्रमबद्ध विवरण]

अनेक परिश्रमी विद्वानों ने उस सूकरखेत को, जहाँ गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा सुनी थी, सोरों (ज़िला एटा) माना है। अपनी विदुषी माता की प्रेरणा से पं० गोविंदवल्लभ भट्ट इस अन्वेषण में जुट गए कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों था। भट्टजी ने 'गोस्वामीजी का जन्म-स्थान राजापुर अथवा शूकरक्षेत्र (सोरों) ?'-नामक लेख आश्विन, १६८६ वि० की माधुरी में प्रकाशित कराया। इससे कुछ महीने पूर्व पं० गौरीशंकर द्विवेदी भी भट्टजी के आधार पर माधुरी की आषाढ़, १६८६ वि० की संख्या में 'महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी'-नामक लेख प्रकाशित करा चुके थे। पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने सटीक रामचरित-मानस की भूमिका और 'तुलसीदास और उनकी कविता'-नामक पुस्तक लिखकर और अनेक तर्क उपस्थित कर सोरों-सिद्धांत को कुछ आगे बढ़ाया। तब तक सोरों की सभी प्रभूत सामग्री प्रकाश में नहीं आई थी। केवल कवि कृष्णदास-कृत 'सूकरक्षेत्र-माहात्म्य' संवत् १६२७ में फ़ीनक्स-प्रेस, दिल्ली से प्रकाशित हो चुका था, जो रायबहादुर कुँवर कंचनसिंहजी द्वारा १६३८ में पुनः प्रकाशित हुआ। 'नवीन भारत', नवंबर, १६३८ ई० के अंक में रत्नावली-संबंधी कुछ चर्चा डॉक्टर श्यामलाल गुप्त बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एस्० और कुछ

बाबू कालीचरण अग्रवाल एम्० ए०, एल् एल्० बी द्वारा की गई। साथ ही उक्त रावबहादुर के उद्योग से श्रीनाहरसिंह सोलंकी बी० ए० के संपादकत्व में 'रत्नावली' नाम की एक सचित्र पुस्तिका प्रकाशित हुई, जिसमें कवि मुरलीधर चतुर्वेदि-कृत 'रत्नावली-चरित' और 'रत्नावली लघु दोहा-संग्रह' एवं पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल् एल्० बी०-कृत भूमिका सम्मिलित है। किंतु विशाल-जनता को इस विशाल चर्चा का सचित्र आभास सर्वप्रथम 'विशाल भारत' द्वारा हुआ। तदनंतर अनेक लेख अनेक महानुभावों द्वारा अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१—'गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली (जीवनी और रचना), पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, 'विशाल भारत' फ़रवरी, १९३६ ई०। इसमें रामवल्लभ मिश्र की हस्तलिपि में उनके गुरु श्रीमुरलीधर चतुर्वेदी-कृत 'रत्नावली-चरित' एवं 'रत्नावली लघु दोहा-संग्रह' के आधार पर रत्नावली की रचना की संक्षिप्त समालोचना दी गई है। साथ ही वाराह मंदिर-घाट, गोस्वामीजी के गुरु नृसिंहजी की पाठशाला, रामवल्लभ मिश्र के हाथ का लिखा "रत्नावली-चरित' एवं बदरियावाले रामचंद्र और ईश्वरनाथ पंडित की प्रतिलिपियों की पुष्पिकाओं के चित्र भी दिए गए हैं।

२—'महाकवि नंददास'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, 'विशाल भारत', जून, १९३६। इसमें सूकरक्षेत्र-माहात्म्य, कृष्णदास-वंशावली के आवश्यक उद्धरण और 'बाल-कांड' और 'आरण्यकांड' की पुष्पिकाएँ दी गई हैं।

३—'तुलसीदास और नंददास'—श्रीरामचंद्र विद्यार्थी, "विशाल भारत', अगस्त, १९३६। लेख-सं० २ की प्रत्यालोचना है।

४—'तुलसी-स्मृति-अंक ('सनाढ्य-जीवन')' सितंबर, १९३६।

संपादक पं० गोविंदवल्लभ भट्ट, पं० भद्रदत्त शर्मा पं० प्रभुदयालु शर्मा। इसमें अनेक विचार-पूर्ण लेख हैं। पं० भद्रदत्त शर्मा, पं० गौरीशंकर द्विवेदी, बाबू दीनदयालु गुप्त, पं० होरीलाल शर्मा गौड़ कविरत्न, पं० रामस्वरूप मिश्र और पं० देवव्रत शास्त्री के लेख विशेष उल्लेखनीय हैं।

५—'दोहा-रत्नावली'—संपादक और प्रकाशक, पं० प्रभुदयालु शर्मा, इटावा १६३६। इसमें रत्नावली के २०१ दोहे हैं। प्रथम प्रयास सुंदर है, किंतु कुछ खटकनेवाली और भ्रमोत्पादक भूलें रह गई हैं।

६—'तुलसी का अध्ययन'—बाबू माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'हिंदुस्तानी', ऑक्टोबर, १६३६, तुलसी-संबंधी अध्ययन का विचार-पूर्ण और क्रमबद्ध विवेचन। इसमें पं० गोविंदवल्लभ भट्ट, पं० गौरीशंकर द्विवेदी, पं० रामदत्त भारद्वाज, पं० भद्रदत्त शर्मा एवं लेख-सं० १-२ और सनाढ्य-जीवन' आदि का उल्लेख है।

७—'तुलसीदास और नंददास के जीवन पर नया प्रकाश'—बाबू दीनदयालु गुप्त एम्० ए०, एल्.एल्. बी०, 'हिंदुस्तानी', ऑक्टोबर, १६३६।

८—'गुसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली'—बाबू दीनदयालु गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। हिंदुस्तानी, जनवरी, १६४०, रत्नावली के दोहों की अच्छी आलोचना है। गुप्तजी से दो भूलें हो गई हैं। आपने रत्नावली के एक दोहे के प्रथम चरण का पाठ दिया है 'सागर कर रस ससि रतन' जो इस प्रकार होना चाहिए 'सागर परस ससी रतन'। कदाचित् आपने छपी पुस्तक का आश्रय लिया, मूल प्रति को भली भाँति देखने की कृपा नहीं की, अन्यथा यह भूल न रहती। दूसरी भूल यह है

कि आपने 'सागर' का अर्थ 'सात' किया है, किंतु आपने इस भूल का सुधार लेख-सं० ३२ में कर दिया है।

९—तुलसी-संबंधी प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथों की खोज—पं० भद्रदत्त शास्त्री। 'हिंदुस्तानी' १ जनवरी, १९४०। इसमें आपने भक्तमाल पर सेवदास की टीका और विष्णुस्वामिचरितामृत तथा तुलसी-संबंधी अन्य कतिपय हस्त-लिखित ग्रंथों पर प्रकाश डाला है।

१०—नंददास—श्रीरामप्रसाद बहुगुणा। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', माघ १९९६ वि०। इसमें सोरों-सामग्री का उल्लेख है, किंतु इसकी सूचना आपको कहाँ से मिली, इस पर प्रकाश डालना आपने उचित नहीं समझा। कदाचित् आपको यह सूचना अपने गुरु उक्त बाबू दीनदयालु गुप्त से मिली हो।

११—'मूल गोसाईं-चरित की अप्रामाणिकता'—प० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'सुधा', एप्रिल, १९४०।

१२—'कुछ प्राचीन वस्तुएँ' (गोस्वामी तुलसीदास पर मधुर प्रकाश) पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'माधुरी' मई, १९४०। इनमें 'भ्रमरगीत'-नामक एक प्राचीन पुस्तक के अंतिम पृष्ठों के अविकल उद्धरण हैं। १६७२ वि० की पुष्पिका से प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी रामायण के कर्ता भारद्वाज-गोत्रीय शुक्ल सनाढ्य थे, और महाकवि नंददास इनके चचेरे भाई और कृष्णदास भतीजे थे। यह लेख पहले नागरी-प्रचारिणी पत्रिका को भेजा गया, किंतु संपादकों को यह बहुत छोटा प्रतीत हुआ।

१३—'गोस्वामीजी के चित्र और प्रतिमाएँ'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'सुधा' मई, १९४०।

१४—'गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म-स्थान'—श्रीरामकिशोर शर्मा बी० ए०। 'विशाल भारत' मई, १९४०। सोरों-सामग्री पर रोचक लेख है।

१५—'सोरों का सौभाग्य'—श्रीकेदारनाथ भट्ट एम्० ए०, एल्-एल्० बी० 'विशाल भारत' जुलाई, १९४० और 'नोक-झोंक' सितंबर, १९४०। यद्यपि यह लेख सोरों-सामग्री के सर्वथा प्रतिकूल है, तथापि आक्षेप की दृष्टि से अत्यंत मनोहर और आकर्षक है। इससे कदाचित् सोरों-सिद्धांत का प्रचार ही हुआ है।

१६—'श्रीगोस्वामी तुलसीदास-चरितामृत'—श्रीलक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एम्० ए०। 'सरस्वती' जुलाई, १९४०। आपके ख़याल से 'तुलसी-चरितामृत' नितांत अंधकार में था। किंतु लेख-सं० ११ में इसकी ओर ध्यान पहले ही आकर्षित किया जा चुका था।

१७—'वर्षतंत्र और वर्षफल'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'माधुरी' (विशेषांक) अगस्त, १९४०। वर्षफल महाकवि नंददासजी के पुत्र कृष्णदास की कृति है। इसकी एक हस्त-लिखित प्रति प्राप्त हुई है। उसके अंतिम छंद से विदित होता है कि १६४७ वि० में रत्नावली की जन्मभूमि बदरिया गंगा की बाढ़ में डूब गई थी। वर्षफल की सूचना 'सनाढ्य-जीवन' के अगस्त, १९४० के अंक में भी दी गई थी।

१८—'तुलसी-जयंती'—श्रीमती सावित्री दुलारेलाल एम्० ए०, लखनऊ रेडियो १० अगस्त, १९४०। इसमें देवीजी ने सोरों-सामग्री की खोज का श्रेय बाबू दीनदयालु गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, लखनऊ को प्रदान किया है।

१९—'Goswami Tulsidas' (गोस्वामी तुलसीदास)—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्०ए०, एल्-एल्० बी०, 'हिंदुस्तान टाइम्स', ११ अगस्त, १९४०।

२०—'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से संबंध रखनेवाली सामग्री की बहिरंग-परीक्षा'—श्रीमाताप्रसाद गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'सम्मेलन-पत्रिका' अगस्त-

सितंबर, १९४०—इसमें सोरों की कुछ सामग्री की बहिरंग परीक्षा के बहाने कुछ निराधार संदेह भी किए गए हैं। इसके प्रारंभ में साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री की सिफ़ारिश है। मंत्रीजी ने सोरों की सामग्री की खोज का श्रेय बाबू माताप्रसाद गुप्त को दे डाला है। उक्त श्रेय किसको मिलना चाहिए—श्रीमाताप्रसाद गुप्त को अथवा श्रीदीनदयालु गुप्त को अथवा पं० गोविंदवल्लभ भट्ट को, जिन्होंने बर्षों परिश्रम कर, अपमान सहकर भी सामग्री जुटाने में प्रमुख भाग लिया है ?

२१—'Ratnawali Tulsidas' (रत्नावली-तुलसीदास)—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए० एल्-एल्० बी०। इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस - लाहौर - अधिवेशन दिसंबर, १९४०। इसमें यहाँ वाली 'दोहा - रत्नावली' पर प्रकाश एवं अब तक प्राप्त सामग्री का विवरण और तुलसी - विषयक अब तक की चर्चा का संक्षिप्त विवेचन है।

२२—'गोस्वामी तुलसीदास और सोरों में प्राप्त सामग्री'—श्रीकेदारनाथ भट्ट एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। आक्षेप की प्रबलता चीण हो चली है; बाबू माताप्रसाद गुप्त का सहारा टटोला गया है। भाषा बड़ी रोचक है। 'विशाल भारत' दिसंबर, १९४०।

२३—'तुलसीदास का जन्म-स्थान'—डॉ० श्यामलाल गुप्त बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एम्०। 'विशाल भारत' दिसंबर १९४०। यह लेख सोरों का 'सौभाग्य'-नामक लेख का उत्तर है, और इतना सुंदर और प्रमाणिक है कि इससे 'विशाल भारत' के संपादक अत्यंत प्रभावित हुए।

२४—'तुलसी - चरित की अप्रामाणिकता'—पं० रामदत्त भारद्वाज, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' १८ दिसंबर, १९४० तथा-कथित बाबा रघुवरदास के तुलसी-

चरित में लिखा है कि गोस्वामीजी ने 'दीक्षित' और 'गेरार' पढ़े थे, किंतु ये कृतियाँ गोस्वामीजी के पीछे की हैं।

२५—'तुलसीदास-संबंधी मेरा स्वप्न'—श्री 'गुप्त प्रकाश'। 'नवीन भारत' २५-१२-४० और 'सुदर्शन' १-१-४१। हास्य-पूर्ण लेख है। 'सनाढ्य-जीवन', इटावा। मार्च, १९४१।

२६—'तुलसीदास और रत्नावली'—अनुवादक, पं० कृष्णदत्त भारद्वाज एम्० ए०, आचार्य, शास्त्री। लेख-सं० २१ का अनुवाद है। 'नवीन भारत' तुलसी-अंक। जनवरी, १९४१।

२७—'वास्तविक शूकरक्षेत्र सोरों (एटा),—श्रीपं० भद्रदत्त शास्त्री 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) जनवरी, १९४१। यह अपने विषय का निराला लेख है। यह लेख 'हिंदुस्तानी' पत्रिका में ६ मास की जेल-यातना भोगकर वापस आया।

२८—'तुलसी और सोरों—श्रीपं० रामचंद्र शुक्ल के मत की समीक्षा'। पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' ८ जनवरी, १९४१।

२९—'मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी की धर्मपत्नी रत्नावली-चरित (गद्यानुवाद)'। पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' १५ जनवरी, १९४१।

३०—'गोस्वामी तुलसीदास का संस्कृत का ज्ञान' पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' १५ जनवरी, १९४१। इसमें यह प्रकाश डाला गया है कि गोस्वामीजी ने अपनी संस्कृत-रचना के किन-किन स्थलों पर संस्कृत-व्याकरण की भूलें की हैं।

३१—'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से संबंध रखनेवाली सामग्री की बहिरंग-परीक्षा'—श्रीप्रेमकृष्ण तिवारी बी० ए०। इसमें बताया गया है कि बाबू माताप्रसाद गुप्त एम्०

ए०, एल्-एल्० बी० कब और किस उद्देश्य से सोरों पधारे थे। 'नवीन भारत' १२ जनवरी, १६४१।

३२—'महाकवि नंददास के जीवन-चरित्र'—श्रीयुत दीनदयालु गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'हिंदुस्तानी' जनवरी, १६४१। इसमें भी लेख-संख्या ८ की प्रथम भूल विद्यमान है, किंतु लेख महत्त्व-पूर्ण है।

३३—'गोस्वामी तुलसीदास के चित्र और प्रतिमाएँ (लेख-सं० १२ का परिवर्द्धित रूप)'—पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) फरवरी, १६४१। इसमें किशनगढ़वाले चित्र की भी समीक्षा है।

३४—'मूल गोसाईं-चरित की अप्रामाणिकता' (लेख सं० ११ का परिवर्द्धित रूप)। पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) फ़रवरी, १६४१। इसमें बताया गया है कि बाबू माताप्रसाद गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी० से भी पहले श्रीमायाशंकर याज्ञिक ने उक्त चरित की अप्रामाणिकता पर इतिहास की दृष्टि से प्रकाश डाला था। अन्य दृष्टि से तो रा० ब० श्रीशुकदेवबिहारी मिश्र और पं० श्रीधर पाठक बहुत कुछ प्रकाश डाल चुके थे। कविरत्न पं० होरीलाल शर्मा गौड़ का 'मूल गोसाईं-चरित' अथवा 'भूल गोसाईं-चरित' भी पढ़ने योग्य है। ('नवीन भारत' मई-जून, १६४१)

३५—'तुलसी-चरित की अप्रामाणिकता'। पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) मार्च, १६४१। लेख-सं० २४ का परिवर्द्धित रूप।

३६—'मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत रत्नावली-चरित (दोनों उपलब्ध प्रतियों का पाठांतर-सहित संपादन)'। पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) मार्च, १६४१।

३७—'दोहा-रत्नावली (चारों उपलब्ध प्रतियों का पाठांतर-सहित संपादन)'। पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी० । 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) मार्च, १९४१ ।

३८—'रत्नावली-दोहों के आधार वचन ।' पं० रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी० । 'नवीन भारत' (तुलसी-अंक) मार्च, १९४१ ।

३९—'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से संबंध रखनेवाली सामग्री की अंतरंग-परीक्षा'—लेखक, डॉ० माता-प्रसाद गुप्त एम्० ए०, डी० लिट्० । 'सम्मेलन-पत्रिका' फाल्गुन-चैत्र, १९९७ ।

इस अंतरंग-परीक्षा ने तो बहिरंग-परीक्षा को भी मात कर दिया । इसमें आपने रामाज्ञा-प्रश्न के आधार पर सोरों-सामग्री पर संदेह प्रकट किया है । जिस बात की आप खोज करना चाहते हैं, उसके विषय में आपने धारणा पहले से ही बना रक्खी है । आश्चर्य है, आप सोरों-सामग्री के बहुत-से अंश को बिना स्वयं देखे ही कभी हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के संपादक और कभी प्रधान मंत्री की सिफ़ारिश के द्वारा 'अत्यंत महत्त्व-पूर्ण' खोज का ढिंढोरा पीट रहे हैं । आपकी खोज का मूलाधार है दोहा-रत्नावली, जो १९३६ में इटावे से प्रकाशित हुई थी । यह पुस्तक शुद्ध नहीं छपी ; इसमें रत्नावली के ४२ वें दोहे का पाठ नितांत अशुद्ध छप गया है । यदि गुप्तजी दोहा-रत्नावली की मूल-प्रतियों को देख लेते, तो उन्हें अनुमान करने की बहुत-सी परेशानी बच जाती । शुद्ध दोहा इस प्रकार है—

सागर४ प० रस६ ससि१ रतन संवत भो दुखदाइ
पिय-वियोग, जननी-मरन करन न भूल्यो जाइ ।

इस दोहे के अनुसार रत्नावली के प्रिय-वियोग का संवत् १६०४

होता है, १६२४ अथवा १६२७ नहीं। अच्छा होता कि डॉक्टर साहब पं० भद्रदत्त शर्मा पर आक्षेप करने से पहले किसी कोष में 'सागर' का अर्थ देख लेते। गणना में 'सागर' का प्रधान अर्थ चार होता है। क्या डॉक्टर साहब यह सिद्ध कर सकते हैं कि सागर का अर्थ चार नहीं होता? खेद है, उक्त पंडितजी की किंचित् असावधानी के कारण गुप्तजी को अनुमानांधकार में घूमना पड़ा। पर क्या डॉक्टर महाशय का यह पुण्य कर्तव्य न था कि वह सोरों की समग्र सामग्री का दर्शन कर लेते?

रत्नावलि-प्रशस्ति

(श्रीपंडित भद्रदत्त शर्मा शास्त्री)

'रत्नावलि', तू धन्य-धन्य तव जन्म-भूमि शुचि 'बदरी' गाम,
धन्य पिता बुध 'दीनबंधु' तव 'दयावती' जननी सुख-धाम ;
धन्य 'आत्माराम' ससुर तव धन्य-धन्य तव 'हुलसी' सास,
धन्य सु-देवर 'नंददास' तव विश्व विदित पति 'तुलसीदास'।
पावन 'सूकरखेत'-'रामपुर' गाम धन्य तव पतिकुल-वास,
'दोहा'-रत्न त्वदीय धन्य-कृति करते पतिरत-धर्म-विकास ;
माता, महिला-रत्न हुई तू विद्या-बुद्धि-विवेक-निधान,
'भद्र' भूमि-भारत में तव सम फिर-फिर जन्में सती सुजान।

इति शुभम् ।

ग्रंथकार की तुलसी-संबंधी एक अन्य महत्त्व-पूर्ण रचना

तुलसी-चर्चा

पर कुछ सम्मतियाँ

" .. ..आपने इस विषय में बड़ा भारी पुरुषार्थ किया है। एक छिपी या छिपाई हुई सचाई आपने संसार के सामने रक्खी है। आपकी लिखी बातों का खंडन करना या जवाब देना कोई खेल नहीं। इसीलिये अब वे लोग प्रायः चुप हैं, जो गोस्वामी तुलसीदासजी को इधर-उधर का सिद्ध करने के लिये शोर मचाया करते थे। मेरी राय में हठधर्मी तो किसी दशा में भी ठीक नहीं होती। तुलसीदासजी के सोरों-निवासी होने के संबंध में जब पर्याप्त प्रमाण उपस्थित हैं, तो उन्हें अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए। कुछ भी हो, आपने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है......।"

हरिशंकर शर्मा

" .....आपने सराहनीय परिश्रम किया है। सोरों को शूकरक्षेत्र प्रमाणित करने के लिये जो प्रमाण संग्रह किए गए हैं, वे बड़े काम के हैं। मूल गोसाईं-चरित की समीक्षा भी आपने बड़े अकाट्य प्रमाणों के आधार पर की है। तुलसीदास की जन्म-भूमि आदि के विषय में एक व्यापक आंदोलन की ज़रूरत है। उनके संबंध में सची ही बातें जनता को बताई और पढ़ाई जानी चाहिए... ।"

रामनरेश त्रिपाठी

"......आपका परिश्रम सब प्रकार से अभिनंदनीय है।"

नरोत्तमदास स्वामी

(डूँगर-कॉलेज, बीकानेर; सदस्य, आगरा-युनिवर्सिटी सिनेट)

"......पुस्तक मैंने आद्योपांत पढ़ी। यह आप लोगों ने बहुत अच्छा किया कि गोस्वामीजी से संबंध रखनेवाली यह समस्त नवीन सामग्री पुस्तकाकार प्रकाशित कर दी। इससे इसके अध्ययन तथा

प्रचार में यथेष्ट सहायता मिलेगी। शूकरक्षेत्र वर्तमान सोरों ही है, इस संबंध में मतभेद के लिये गुंजाइश नहीं। 'मूल-गोसाईं'-चरित' तथा 'तुलसी-चरित' मेरी समझ में भी अप्रामाणिक ग्रंथ हैं। गोस्वामीजी का जन्म-स्थान राजापुर के निकट था अथवा वह कान्यकुब्ज या सरयूपारीण ब्राह्मण थे, इन मतों की पुष्टि में आज तक जितने भी प्रमाण दिए गए हैं, वे अभी तक मेरे गले नहीं उतर सके। मुझे तो उनमें खींच-तान ही अधिक दिखलाई पड़ती है। रत्नावली-चरित, रत्नावली के दोहे तथा सोरों की अन्य सामग्री का अध्ययन मूल-रूप में मैं नहीं कर सका, इसलिये इस संबंध में निर्णयात्मक रीति से अभी कुछ नहीं कह सकता। यों रत्नावली के दोहों की भावुकता से मैं प्रभावित अवश्य हुआ। कृति पुरानी हो सकती है। मेरा झुकाव तो सदा से इसी ओर है कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान कदाचित् सोरों था,.........उनके कान्यकुब्ज अथवा सरयूपारीण होने के स्थान पर सनाढ्य होने की अधिक संभावना है। ... आशा है, आप लोग इस खोज के कार्य को आगे बढ़ाने का यत्न करेंगे...... ।"

धीरेंद्र वर्मा

(अध्यक्ष हिंदी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय)

"I have gone through the book and found it quite interesting... . I must say that I have greatly liked the work and I congratulate yon on its production......"
"......Your criticism of the Tulsi Charita and the mool Gosain Charita has met with my general appreciation. I have already informed you that I have greatly liked your work on the whole"

Rao Raja Rai Bahadur Dr. Shyam Bahari misra,
M A, D Litt.

I have read through the illustrated Tulsi-Charcha and found it quite interesting and informative. It is an asset to Hindi Literature as it throws fresh and profuse light on the home of Goswami Tulsidas and Ratnavali. you have given, by new and convincing arguments, a masterly stroke to the Mool Gosain Charita and the Tulsi Charita. I highly appreciate your discovery of a few manuscripts specially the Ratnavali Charita by Murali Dhar Chaturvedi and the Dohas by Ratnavali. I am impressed as regards their language and diction which represent their age. I consider your work to be of intrinsic merit and of a very high order I congratulate you on your laudable efforts.

20th October, 1941.

Lachhmidhar
Mahamahopabhyaya,
Shastri, M. A., M. O L.,
Head of the Department of
Sanskrit and Hindi,
University of Delhi.